शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

卐 : संपादक : रामजी माणेकचंद दोशी वकील 卐

मार्च : १९६१ ☆ वर्ष सोलहवाँ, फाल्गुन, वीर नि०सं० २४८७ ☆ अंक : ११

सर्वज्ञपद

सर्वज्ञपद बारम्बार श्रवण करने योग्य, पठन करने योग्य, विचार करने योग्य, लक्ष करने योग्य तथा स्वानुभवसिद्ध करने योग्य है।

(—श्रीमद् राजचन्द्र, २९ वाँ वर्ष)

वार्षिक मूल्य
तीन रुपया

[१९१]

एक अंक
चार आना

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

जैन दर्शन शिक्षणवर्ग

ग्रीष्मावकाश की छुट्टियों में विद्यार्थियों के लिये सोनगढ़ (सौराष्ट्र) में जैन दर्शन शिक्षणवर्ग चालू होगा, जो कि मई मास ता० ७-५-६१ से शुरु होकर ता० २८-५-६१ तक चलेगा।

हरेक जिज्ञासु विद्यार्थी तत्त्वज्ञान द्वारा प्रयोजनभूत आत्महित का मार्ग स्पष्टरूप में समझ सके, इसलिये जैन दर्शन का शिक्षणवर्ग शुरु होगा, जिज्ञासु विद्यार्थी धार्मिक शिक्षण का लाभ लेकर छुट्टियों का सदुपयोग करें, ऐसी खास प्रार्थना है। विद्यार्थियों के लिये रहने, जीमने की व्यवस्था संस्था की ओर से होगी। आने के लिये पत्र द्वारा जवाब मंगवा लेवें।

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

नया प्रकाशन

जैन सिद्धान्त प्रश्नोत्तरमाला भाग तीसरा

सेठी ग्रन्थमाला से यह दूसरी आवृत्ति है। प्रश्नोत्तरमाला भाग १-२-३ प्राय: बहुत जगह पाठशाला में चलती है। प्रथम भाग तीसरी आवृत्ति है, सभी जिज्ञासुओं के लिये अति उपयोगी है बहुत जगह से मांग चालू है। तीसरा भाग पृ० संख्या १४२ मूल्य ६५ न.पै. पोस्टेज अलग। थोक लेने पर कमीशन देंगे। प्रथम भाग पृ०सं० १२४, दूसरा भाग पृ० १३७, मूल्य ६० नये पैसे।

छहढाला (सस्ते में)

यह ग्रन्थ हिन्दी में बहुत बार छप चुका है, रोचक ढंग से आत्महित का स्वरूप और गागर में सागर के समान जैनतत्त्वज्ञान इतना सुगम शैली से भरा है कि वर्तमान समाज में सब जगह जिज्ञासुओं को देख-देखकर बांटने लायक है। पृ० सं० १६१, मूल्य ८१ नये पैसे। थोक लेने पर कमीशन देंगे।

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

卐 : संपादक : रामजी माणेकचंद दोशी वकील 卐

मार्च : १९६१ ☆ वर्ष सोलहवाँ, फाल्गुन, वीर नि०सं० २४८७ ☆ अंक : ११

१७ वर्ष के २०० अंकों का

सारांश

'आत्मधर्म' (गुजराती) का १७वाँ वर्ष गत आश्विन मास में समाप्त हुआ। उसके २००वें अंक में पिछले सभी अंकों का पुनरावलोकन करके उनमें से संक्षिप्त सारांश दिया गया था। यहाँ (१ से २०० तक) जो नम्बर दिये गये हैं वह क्रमशः उसी अंक का संक्षिप्त सारांश है; आशा है यह जिज्ञासु पाठकों को जरूर पसन्द आयेगा।

(१) हे सर्वोत्कृष्ट सुख के हेतुभूत सम्यग्दर्शन! तुझे अत्यन्त भक्तिपूर्वक नमस्कार हो!

(२) आत्मस्वरूप की यथार्थ श्रद्धा करना ही प्रत्येक जीव का प्रथम कर्तव्य है। अनंत काल में दुर्लभ मनुष्यभव, उसमें उत्तम जैनधर्म और सत्समागम का योग—इतना सब मिलने पर भी यदि स्वभाव के बल से सत् की श्रद्धा नहीं की तो चौरासी के चक्कर में पुनः ऐसा उत्तम मनुष्य शरीर मिलना दुर्लभ है।

(३) कोई आत्मा—ज्ञानी या अज्ञानी—एक परमाणुमात्र को हिलाने का सामर्थ्य नहीं रखता; तो फिर देहादि की क्रिया आत्मा के हाथ में कहाँ से होगी ? ज्ञानी और अज्ञानी में आकाश-पाताल जितना महान अन्तर है; वह यही कि अज्ञानी परद्रव्य का तथा राग-द्वेष का कर्ता होता है और ज्ञानी अपने को शुद्ध अनुभव करता हुआ उसका कर्ता नहीं होता।

(४) क— आजतक तूने पर को (जीव को या जड़ को) किंचित्मात्र लाभ या हानि नहीं पहुँचाई है।

ख— आजतक तुझे किसी ने (जीव ने या जड़ ने) किंचित्मात्र लाभ या हानि नहीं पहुँचाई है।

ग— आजतक तूने अपने को हानि पहुँचानेवाला व्यवसाय किया है; और जबतक सच्ची समझ नहीं करेगा, तबतक वह व्यवसाय चलने ही वाला है।

घ— वह हानि तेरी क्षणिक पर्याय में हुई है; तेरी वस्तु में नहीं हुई।

ङ— तेरी चैतन्य वस्तु ध्रुव अविनाशी है; इसलिये ध्रुव स्वभाव की ओर लक्ष (दृष्टि) दे, तो शुद्धता प्रगट हो और हानि दूर होकर अचल लाभ का व्यवसाय प्रारम्भ हो।

(५) अखण्ड चैतन्यमूर्ति ज्ञायकस्वभाव ही मैं हूँ; ज्ञान के अतिरिक्त अन्य कोई मेरा स्वभाव नहीं है।

(६) दिगम्बर जैनधर्म ही सच्चा जैनधर्म है और आंतरिक तथा बाह्य दिगम्बरत्व के बिना कोई जीव मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता।

(७) समस्त संसार और संसार की ओर के भाव से अब हम संकुचित होकर चिदानन्द ध्रुवस्वभावी ऐसे 'समयसार' में समा जाना चाहते हैं; बाह्य या अन्तर्संयोग की स्वप्न में भी इच्छा नहीं रखते.... बाह्य भाव तो अनंत काल तक किये... अब हमारा परिणमन अंतरोन्मुख हो रहा है... अप्रतिहतभाव से अंतर में ढले... अब हमारी शुद्ध परिणति को रोकने के लिये जगत में कोई समर्थ नहीं है।

(८) अपने वीतरागस्वरूप की प्रतीति सहित जिनबिम्बदर्शन से सिद्धत्त और निकाचित कर्म भी चूर-चूर हो जाते हैं... जिसप्रकार बिजली गिरने से विशाल पाषाण भी खण्ड-खण्ड हो जाते हैं, उसीप्रकार आत्म-पुरुषार्थ के समक्ष कर्म भी चूर-चूर हो जाते हैं।

(९) सुखस्वरूप की प्रतीति बिना किसी को, किसी काल में, किसी क्षेत्र में सुख नहीं हो सकता। आत्मा अपने दु:खरहित सुखस्वरूप को नहीं जानता, इसलिये अपना सुख पर से (पर के आधार से) मानता है; वह मान्यता ही दु:ख का मूल है।

(१०) **'एक बार स्वीकार तो कर!'** अनंत ज्ञानी कहते हैं कि 'तू प्रभु है।' प्रभु! अपने प्रभुत्व को एकबार स्वीकार तो कर! एकबार अंतर में झांककर देखे तो तुझे अपने स्वभाव के किसी अपूर्व परम सहज सुख का अनुभव होगा।

(११) 'मैं आत्मतत्त्व एक क्षण में अनंत पुरुषार्थ करके अनंत काल की उलझन तोड़नेवाला

हूँ, क्योंकि मैं अनंत वीर्य की मूर्ति हूँ'—ऐसी जिसे प्रतीति हो, उसे अनंत संसार नहीं होता।

(१२) आज श्रुतपंचमी है! आज ज्ञान की आराधना का दिवस है। आचार्य भगवान कहते हैं कि—हमारा कार्य तो इतना था कि विकल्प तोड़कर सातवें गुणस्थान में स्वरूप की रमणता में बलपूर्वक स्थिर हुए; वहाँ से फिर छठवें गुणस्थान में आने की बात ही नहीं थी। सीधी वीतरागता में ही... ! छठवें गुणस्थान में आने का खेद है। अहा! देखो तो यह दशा! मानों साक्षात् वीतराग की वाणी! बात कानों में पड़ते ही ऐसी झनझनाहट हो जाती है मानों केवलज्ञान आया!

— ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी—'श्रुतपंचमी' का दिन मुमुक्षु जीवों के लिये महा मांगलिक है... श्री भूतबलि आचार्यदेव ने इसीदिन चतुर्विध संघ के साथ (अंकलेश्वर में) श्रुतज्ञान की पूजा की, इसलिये यह दिन जैन सम्प्रदाय में श्रुतपंचमी के नाम से प्रख्यात है... केवलज्ञानी तीर्थंकर की यह वाणी केवलज्ञान की झंकार करती आयी है।

(१३) अब सावधान हो... सावधान हो... सर्वज्ञ जिनप्रणीत धर्म को अंगीकार कर... भाई! तू उत्तम जीव है, अत्यन्त भव्य है, तेरी मुक्ति का अवसर निकट आया है, इसीलिये श्री गुरुओं का ऐसा उपदेश तुझे प्राप्त हुआ है। अहा! कैसा पवित्र, निर्दोष और मधुर उपदेश है। ऐसे परम हितकारी उपदेश को कौन अंगीकार नहीं करेगा?—जिसे संसार से पार होना है, जन्म-मरण का अंत करना है, तथा जिसे आत्मस्वरूप की अभिलाषा है, वह तो अवश्य ही इस बात को मानेगा।

(१४) हे माता! हम प्रण करते हैं कि अब दूसरा भव या दूसरी माता नहीं करेंगे। हे माता तुझे अवश्य दुःख होगा, किन्तु दूसरी माता को हम नहीं रुलायेंगे। हम अशरीरी सिद्ध हो जायेंगे। हे माता! आज्ञा दो!

(१५) सर्वज्ञ परमात्मा जिनेश्वरदेव का सेवक बनने के लिये सारी दुनिया को छोड़ देना पड़ता है। जगत की समस्त प्रतिकूलताएँ आ पड़ें, तब भी भगवान अरहंतदेव की श्रद्धा और भक्ति को नहीं छोड़ा जाता। अरहंतदेव का सेवक हुआ, तो अब अरहंत-पद प्राप्त करना ही होगा। अरहंत का भक्त आपत्तियों की परवाह नहीं करता।

(१६) मोक्षमार्ग उसका नाम है कि आत्मभानसहित आत्मा की स्थिरता में रहकर आगे बढ़ें! उसे मोक्षमार्ग कहो, अमृतमार्ग कहो या स्वरूप-मार्ग कहो—सब एक ही हैं। जो प्रभु हुए, वे बाह्य साधन से नहीं किन्तु अन्तर्स्वरूप के सामर्थ्य से हुए हैं। सर्व आत्मा शक्तिरूप से प्रभुस्वरूप हैं; जो अपनी प्रभुता को पहिचाने, वही प्रभु होता है।

(१७) —श्री जिनदेव केवलज्ञान शरीर हैं। (पृष्ठ-१)

—सिद्धभगवान शिवस्वरूप हैं। (पृष्ठ-२)

—श्रुतदेवी माता (अम्बा) सदा चक्षुष्मति अर्थात् जागृतचक्षु हैं। (पृष्ठ-३)

—गणधरदेव समुद्र को लोग नमस्कार करो। (पृष्ठ-३)

[—कषायप्राभृत-जयधवला, पृष्ठ-१]

(१८) यदि ऐसा कहा जाये कि केवलज्ञान असिद्ध हैं, तो ऐसा भी नहीं है; क्योंकि स्वसंवेदन प्रत्यक्ष द्वारा केवलज्ञान के अंशरूप ज्ञान की निर्बाधरूप से उपलब्धि होती है, अर्थात् मतिज्ञानादिक, केवलज्ञान के अंशरूप हैं और उनकी उपलब्धि स्वसंवेदन प्रत्यक्ष से सबको होती है; इसलिये केवलज्ञान के अंशरूप अवयव प्रत्यक्ष है इसलिये, केवलज्ञान-अवयवी को परोक्ष कहना युक्त नहीं है। [—कषायप्राभृत-जयधवला, पु. १, पृष्ठ ४४]

(१९) अहा! संतों ने मार्ग सरल बना दिया है। आत्मतत्त्व की प्रतीति बिना तू क्या करेगा भाई! जिससे जन्म-मरण का अंत न आये तथा आत्मतत्त्व की स्वाधीनता का विकास न हो वह आचरण ही कैसा? 'मैं और तू समान हैं;' बोल, यह बात जमती है?—यदि 'हाँ' (स्वीकार) हो तो चला आ!

(२०) श्री 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार' की २६वीं गाथा में श्री समंतभद्राचार्य ने कहा है कि—न धर्मो धार्मिकैर्विना' (—धर्म धर्मात्मा के बिना नहीं होता।) जिसे आत्मा के धर्म की रुचि है, उसे जहाँ-जहाँ धर्म देखे, वहाँ प्रमोद तथा आदरभाव आये बिना नहीं रहता... उसे दूसरे धर्मात्माओं के प्रति अरुचि या द्वेषभाव नहीं होता।

(२१) 'महाराजजी के इस अद्भुत तत्त्वज्ञान का सारी दुनिया में हर एक भाषा में प्रचार हो ऐसी हमारी भावना है; और हिन्दी भाषा का बहुत प्रचार है, इसलिये महाराजजी के प्रवचनों का गुजराती में तथा हिन्दी में भी जो 'आत्मधर्म' नामक पत्र निकलता है, उसके प्रचार के लिये १००१) एक हजार एक रुपये की सहायता देता हूँ।' (—सर सेठ हुकमचन्दजी, इन्दौर)

(२२) अहो समयसार! तेरा माहात्म्य किसप्रकार करें? अरे, इस चांदी का तो मूल्य ही क्या, स्वर्ण-पत्रों पर यदि रत्नों के अक्षर लिखूँ तो भी तेरा मूल्यांकन नहीं हो सकता.... आत्मस्वरूप की प्रतीति हो, तभी उसकी महिमा समझ में आती है और इस समयसार का मूल्य जाना जाता है।

(२३) अनेक जिज्ञासुओं के मन में यही प्रश्न उठता है कि धर्म के लिये प्रथम क्या करें ?—इसलिये कहा है कि प्रथम श्रुतज्ञान के अवलम्बन से आत्मा का निर्णय करना चाहिये... जिसने स्वभाव के लक्ष से श्रुत का अवलम्बन किया है, वह अल्पकाल में आत्मानुभव करेगा ही। मैं तो स्वाधीन ज्ञानस्वभावी हूँ—ऐसा जिसने निर्णय किया, उसे अनुभव हुए बिना नहीं रहेगा। यहाँ प्रारम्भ ही इतने बलपूर्वक किया है कि पीछे हटने की बात ही नहीं है।

(२४) यदि तुम्हें अपना हित करना है तो सर्व आत्महित का मूल कारण जो आप्त (–सर्वज्ञ वीतराग परम हितोपदेशक) उसके स्वरूप का सच्चा निर्णय करके ज्ञान में लाओ... जो सत्पुरुष हैं, उन्होंने अपने कल्याण के हेतु सर्व सुखों का मूलकारण जो आप्त–अरिहंत, सर्वज्ञ—उनका सर्व प्रथम युक्तिपूर्वक निर्णय करके आश्रय लेने योग्य है... सर्व प्रथम अरिहंत सर्वज्ञ के निर्णयरूप कार्य करना चाहिये—ऐसी श्रीगुरु की मूल शिक्षा है।

(२५) यहाँ भगवान महावीर का निर्वाणकल्याणक मनाने की जो विधि—जो स्वरूप बतलाया, उसे तदनुसार समझकर जो अपना स्वरूप प्रगट करेगा, वह मुक्ति प्राप्त करेगा। जैसा भगवान महावीर के आत्मा का स्वरूप है, वैसा ही सर्व आत्माओं का स्वरूप है।

(२६) यहाँ तो सम्पूर्ण आत्मस्वभाव प्रसन्न होता है; किसे प्रसन्न होता है ? जिसे जीव ने परिपूर्ण स्वभाव का निर्णय किया, उस जीव पर स्वभाव प्रसन्न होता है। जहाँ स्वभाव को निर्णय में लिया, वहाँ स्वभाव प्रसन्न होकर कहता है कि माँग ! माँग ! जिस दशा की आवश्यकता हो, वह देने के लिये तैयार हूँ। पूर्ण सिद्धपद माँग ! मैं इसी क्षण वह तुझे दे सकता हूँ।—इसप्रकार स्वयं जिस पर्यायरूप होना चाहे, वह पर्याय, स्वभाव में से प्रगट हो सकती है।

(२७) 'महाराजजी ! मेरे आनन्द का पार नहीं है; आप तो श्री वीर भगवान और कुन्दकुन्द आचार्य का मार्ग प्रकाशित कर रहे हैं... मेरे आनन्द की क्या बात करूँ ! (–सर सेठ हुकमचन्दजी, इन्दौर)

(२८) सर्वज्ञ भगवान के केवलज्ञान का निर्णय करनेवाले के ज्ञान में अनंत पुरुषाथ आ ही जाता है... केवलज्ञान को स्वीकार करने में अनंत पुरुषार्थ की अस्ति आती है, तथापि स्वीकार नहीं करता तो तू मात्र बातें ही करता है, तुझे सर्वज्ञ का निर्णय नहीं हुआ है। यदि सर्वज्ञ का निर्णय हो तो पुरुषार्थ की और भव की शंका नहीं होती; सच्चा निर्णय आये और पुरुषार्थ न आये, ऐसा हो ही नहीं सकता।

(२९) स्वरूपस्थित साधक संत-मुनि को परिषह का किंचित् दुःख नहीं है; वे तो परम सुखी हैं... आत्मा के चैतन्य की प्रेरणा के अमृत झरने पी रहे हैं... आत्मसुख के अनुभव में वे ऐसे लीन हैं कि शरीर का लक्ष नहीं हैं, मानों अनंत सिद्धों की पंक्ति में बैठकर आत्मा के अमृत का आनन्द भोग रहे हैं... वन्दन हो उन साधक-संत मुनि को!

(३०) कुन्दकुन्द भगवान ललकारते हुए चेतावनी देते हैं कि—अरे भाई! ध्यान रखना; स्वभाव की साधकदशा के बीच राग अवश्य आ जायेगा; मुनिदशा में भी विकल्प उठेंगे, किन्तु उन्हें साधन न मानना; उनकी रुचि मत करना; वे तो बाधक हैं; उन्हें बाधकरूप जानकर छोड़ देना और निश्चयस्वभाव के बल से आगे बढ़ना—अर्थात् निश्चयस्वभाव की दृष्टि के बल से ही तेरी पर्याय क्रमशः शुद्ध होती जायेगी।

(३१) शुभभाव वह धर्म का सोपान नहीं है, किन्तु सम्यक् प्रतीति और सम्यक् समझ ही धर्म की सीढ़ी है। केवलज्ञानदशा वह सम्पूर्ण धर्म है और सम्यक् प्रतीति अंशतः धर्म (श्रद्धारूपी धर्म) है; वह श्रद्धारूपी धर्म ही धर्म की पहली सीढ़ी है। इसप्रकार धर्म की सीढ़ी भी धर्मरूप ही है... अधर्मरूप ऐसा शुभभाव कदापि धर्म की सीढ़ी नहीं है... भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने कहा है कि—'दंसणमूलो धम्मो' धर्म का मूल दर्शन है।

(३२) आचार्य कहते हैं कि—जब हमें स्वरूप में समा जाने का, विकल्प तोड़कर स्थिर होने का अवसर आया है... और तू संसार भ्रमण से थककर हमारे पास आया है, तब अन्य सब कुछ भूलकर हमारा अनुभव जान ले! सबसे पहले एक बात सुन ले कि—तू ज्ञायकस्वरूप है, मुक्त है! अपने स्वतंत्रस्वभाव का स्वीकार कर! एक बार पृथक् चैतन्यस्वभाव के निकट आकर अंतर्दृष्टि से देख और श्रद्धा कर! वही सम्यग्दर्शन है। मुक्त स्वभाव का स्वीकार किया, अंतरंग उल्लासपूर्वक सत् का आदर किया, वही मोक्ष का बीज है। स्वप्नावस्था में भी वही विचार, उसी का आदर तथा उसी के दर्शन होते रहते हैं।

(३३) सौराष्ट्र देश में गिरनार पर्वत की चंद्र गुफा में महामुनि श्री धरेसनाचार्यदेव विराज रहे थे... एक शुभस्वप्न देखकर वे संतुष्ट हो गये और उत्साह में आकर बोल उठे कि—'जय हो श्रुतज्ञान की!' उसी दिन दो मुनि आ पहुँचे और वंदना करके आज्ञा माँगी। धरसेनाचार्यदेव ने उनकी परीक्षा की और संतुष्ट होकर, सर्वज्ञ परम्परा से चला आ रहा ऐसा श्रुतज्ञान उन्हें दिया।

(३४) 'स्वरूप का अनुभव कठिन है'—ऐसा माननेवाला बहिरात्मा है। ×××जब

अवकाश हो, तब पर की बातें रुचिपूर्वक करता है किन्तु उससमय स्वभाव की बात करे तो कौन रोकता है ? ×××विपरीत भाव कर रहा है, वहाँ तुझे प्रतिकूल संयोग बाधक नहीं होते और स्वरूप की प्रतीति के सच्चे शुभभाव करने में प्रतिकूल संयोग बाधक होते हैं ?—वाह !..... स्वयं को आत्मा की दरकार नहीं है, इसलिये संयोगों का दोष निकालता है।

(३५) सम्यग्दर्शन इस जगत में सर्वश्रेष्ठ कल्याणकारी वस्तु है। सम्यग्दर्शन की अपूर्व महिमा है××× अहा! यह बात सुनकर किस जीव को उत्साह जागृत नहीं होगा ? जिसप्रकार प्रद्युम्नकुमार को देखकर उनकी सच्ची जननी रुक्मिणी के स्तनों में दूध उमड़ पड़ा था; उसीप्रकार सच्चे जिज्ञासे जीवों को अपने सम्यग्दर्शन की बात सुनकर रोम-रोम में (प्रदेश-प्रदेश में) उत्साह उमड़ आता है और यथार्थ निर्णय करके उस सत्य निर्णय के बल से वे केवलज्ञानोन्मुख पुरुषार्थ करते हैं।

(३६) प्रभु! यह अमूल्य अवसर प्राप्त हुआ है। यदि इस समय सत् की प्रतीति-पहिचान नहीं की तो असत् के प्रेम से तेरा आत्मसूर्य अस्त हो जायेगा।...भाई! सर्वप्रथम तुझसे आत्मस्वभाव की प्रतीति करने को कहा जा रहा है... इसलिये तू किसी भी उपाय से, अति प्रयत्नपूर्वक सत् को समझ। देखो तो ज्ञानियों की करुणा! ऐसा उपदेश सुनकर आत्मा की रुचि-बहुमानवाले जीव को ज्ञानी प्रति बहुमान आये बिना कैसे रह सकता है ? ....हे नाथ! यदि तुम्हारे चरणों की भक्ति न होती तो इस जगत के जीवों का जन्म-मरण से उद्धार कैसे होता ?

(३७) 'आज पवित्र आत्मा श्री महावीर भगवान ने सदा के लिये संसार से मुक्त होकर—अभूतपूर्व सिद्धदशा प्राप्त की और श्री गौतम गणधर ने केवलज्ञान प्राप्त किया'—यह सुनकर किस मुमुक्षु का हृदय आनन्द से नहीं नाच उठेगा!!.... जिन भव्यात्माओं ने आत्मा में शुद्ध सम्यग्दर्शनादि प्रकाश प्रगट करके सिद्धदशा की ओर पुनीत प्रयाण किया है, वे भी धन्य हैं.... जिनके पवित्र आत्मा में शुद्ध सम्यग्दर्शनरूपी प्रभात उदित हुआ है, वे भावना करते हैं कि—अहो! धन्य वह काल और धन्य वह भाव! मेरे आत्मा में केवलज्ञान का सूर्योदय हो गया है!

(३८) लोग कहते हैं कि क्रिया से धर्म होता है—किन्तु किसकी क्रिया ? और कैसी क्रिया ?—जड़ की क्रिया अथवा चेतन की ? विकारी क्रिया अथवा अविकारी ? जड़ की क्रिया, विकारी क्रिया और अविकारी क्रिया—उसके स्वरूप का जिसे भान नहीं है, वह धर्म की क्रिया कहाँ से करेगा ? मुक्ति की क्रिया में पर के साथ तो सम्बन्ध नहीं है, और परोन्मुखता से जो भाव

होता है, उसके साथ भी सम्बन्ध नहीं है... स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान और स्थिरता में जो स्थित है, वही अविकारी क्रिया है; वह धर्म है, वह मोक्ष उत्पादक है।

(३९) अहा, धन्य है वह धर्मकाल और वे धर्मात्मा! जब झूले में ही बच्चों को तत्त्व की प्रतीति कराई जाती थी... सच्चा तत्त्वज्ञान घर-घर में प्राप्त होता था और वे आत्मा भी कुमारावस्था से ही तत्त्व प्रेमी होते थे... तत्त्वज्ञान उनके जीवन का मुख्य ध्येय होता था... आज इस भरतक्षेत्र में पुनः धर्ममार्ग का सुप्रभात हो रहा है।

(४०) हे जीवों! यदि तुम आत्मकल्याण को चाहते हो तो स्वतः शुद्ध और समस्त प्रकार से परिपूर्ण आत्मस्वभाव की रुचि और विश्वास करो; उसी का लक्ष और आश्रय करो... उसके आश्रय से, लक्ष से पूर्णता की प्रतीतिरूप सम्यग्दर्शन होगा। वह सम्यग्दर्शन स्वयं कल्याणस्वरूप है और वही सर्व कल्याण का मूल है। ज्ञानी सम्यग्दर्शन को 'कल्याण की मूर्ति' कहते हैं। इसलिये हे जीवो! तुम सर्वप्रथम सम्यग्दर्शन प्रगट करने का अभ्यास करो... हे जीव! सर्वज्ञ के धर्म के अतिरिक्त इस जगत में कोई शरणभूत नहीं है, इसलिये सर्वज्ञदेव कथित आत्मस्वभाव का आराधन कर।

(४१) अरे भाई! तू लोकसंज्ञा छोड़कर स्वतत्त्व का आदर कर। यह लोक कुछ भी कहे, तू लोकसंज्ञा से उदास हो जा। मृत्युकाल में जिसप्रकार कोई सहायक नहीं होता, उसीप्रकार इस जगत में अपने स्वतत्त्व के आदर को छोड़कर अन्य कोई तुझे शरणभूत नहीं है; इसलिये दुनिया की चिन्ता छोड़कर आत्मा के कल्याण का मार्ग ग्रहण कर।

(४२) 'आत्मार्थी श्री कानजी महाराज द्वारा दिगम्बर जैनधर्म का जो संरक्षण और संवर्द्धन हो रहा है, उसका विद्वत् परीषद श्रद्धापूर्वक अभिनन्दन करती है.... इस अवसर पर अभिनन्दन और स्वागत के साथ-साथ परिषद यह भी घोषित करती है कि—उन महानुभाव का जो कर्तव्य है, वह हमारा ही है, इसलिये इस प्रवृत्ति में हम उनके साथ हैं।

(—तीसरे अधिवेशन के समय 'भारतवर्षीय दि० जैन विद्वत्परिषद' द्वारा पारित प्रस्ताव में से)

(४३) जिसप्रकार एक गुफा में छह मुनिराज दीर्घकाल से रहते हैं, परन्तु कोई किसी से मोहित नहीं है, उदासीनपूर्वक एक ही क्षेत्र में रहते हैं; उसीप्रकार छह द्रव्य एक लोकरूपी क्षेत्र में जानना। लोकरूपी गुफा में छहों द्रव्य वीतरागी मुनियों की भाँति एक-दूसरे से निरपेक्षरूप विद्यमान हैं; कोई द्रव्य अन्य द्रव्य की अपेक्षा नहीं रखता।

(४४) भले ही आज भरतक्षेत्र में बारह अंग, चौदह पूर्व के ज्ञाता विद्यमान नहीं हैं, तथापि बारह अंग और चौदह पूर्व का एकमात्र प्रयोजन जो शुद्धात्मा का ज्ञान, उसके धारण करनेवाले श्रुतज्ञानी तो आज भी विद्यमान हैं... बारह अंग चौदहपूर्व के ज्ञाता श्रुतज्ञानी जैसे शुद्धात्मा को जानते थे, वैसे ही शुद्धात्मा का ज्ञान आज भी हो सकता है; इसलिये भव्य जीव अंतरंग में प्रमोद करो कि आज भी सत्श्रुत जयवन्त वर्त रहा है।

(४५) '**निर्मलात्मसिद्धिस्तु**'—श्री चारण मुनियों के ऐसे महा पवित्र आशीर्वाद को पाकर उससमय धर्मात्मा भरत के हृदय में कैसा आह्लाद उत्पन्न हुआ होगा—यह तो परमात्मा ही जानें। अहा! ऐसे अवसर पर आत्मार्थियों का उल्लास अंतर में कैसे समा सकता है?—इस समय तो भरतजी इसप्रकार नाच उठे थे मानों साक्षात् मुक्ति ही उनके हाथ में आ गई हो! ठीक ही है; क्योंकि धर्मात्माओं को जगत के किसी भी पदार्थ की अपेक्षा अपनी पवित्रदशा की प्राप्ति का उल्लास अपूर्व होता है।

—स्वतंत्रता वहाँ यथार्थता; और यथार्थता वहाँ वीतरागता। वस्तुस्वभाव स्वतंत्र है, उस स्वतंत्र की प्रतीति में ज्ञान की यथार्थता है और उस यथार्थता में वीतरागता है।

(४६) हे शिवपुरी के पथिक! प्रथम भाव को जान। भावरहित लिंग से तुझे क्या प्रयोजन है? शिवपुरी का पंथ जिनभगवन्तों ने प्रयत्न साध्य कहा है।

(४७) हे जीव! तूने आत्मा को भूलकर देहदृष्टि से तो अनन्त जीवन व्यतीत किये और फिर भी तेरा भवभ्रमण का दुःख तो बना ही रहा; किन्तु अब सत्पुरुषों की आज्ञा में आत्मदृष्टि से एक जीवन तो ऐसा व्यतीत कर कि जिसके पश्चात् भव ही धारण न करना पड़े।

(४८) दीपावली का मंगलमय पर्व तो आत्मिक स्वाधीनता का उत्सव है। आत्मस्वाधीनता उसे कहा जाता है जिसमें आत्मा स्वयं संपूर्ण सुखी हो। ऐसी सम्पूर्ण स्वाधीनता प्रातः स्मरणीय श्री सिद्धभगवन्तों को है.... सिद्धदशा ही सम्पूर्ण आत्मस्वाधीनता है। ऐसी आत्मस्वाधीनता की धन्य घड़ी का महोत्सव करना ही स्वाधीनता का सच्चा उत्सव है। कार्मिक कृष्णा १४ की रात्रि के पश्चात्—अमावस्या के सुप्रभात में—भगवान महावीर प्रभु ने अभूतपूर्व सिद्धदशा प्राप्त की... आत्मस्वाधीनता प्राप्त की।

(४९) '**सहजशुद्धज्ञानानन्दैकस्वभावोऽहं, निर्विकल्पोऽहं, उदासीनोऽहं, निजनिरंजन-शुद्धात्मश्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपनिश्चयरत्नत्रयात्मकनिर्विकल्पसमाधिसंजातवीतरागसहजानन्द** -

रूपसुखानुभूतिमात्रलक्षणेन स्वसंवेदनज्ञानेन स्वसंवेद्यो गम्यः प्राप्यो भरितावस्थोऽहं,.... सर्वविभावपरिणामरहितशून्योऽहं, जगत्त्रये कालत्रयेऽपि मनोवचनकायैः कृतकारितानुमतैश्च शुद्धनिश्चयनयेन। तथा सर्वेऽपि जीवाः, इति निरन्तर भावना कर्तव्येति॥' (समयसार-जयसेनाचार्य टीका, तथा परमात्मप्रकाश)

(५०) आत्मा का परम आनन्द वह मांगलिक है... आचार्यदेव ने स्वयं परमानन्द का अनुभव किया है और 'जगत के जीव भी आनन्द को प्राप्त हों' ऐसी भावना से आचार्य-भगवन्तों ने ऐसे महान शास्त्रों की रचना करके जगत को आनन्द तथा परमानन्द की भेंट की है। भगवान की वाणी द्वारा स्वयं परमानन्द की प्राप्ति करके, वही वाणी भव्य जीवों को परमानन्द की प्राप्ति के लिये भेंट की है। जिसे मोहदशा प्रगट करना हो, उसे वह भेंट दी है। इन शास्त्रों द्वारा आचार्यों ने जगत को परमानन्द की भेंट दी है; इनका प्रत्येक अक्षर आत्मानन्द का निमित्त है।

(५१) यथार्थ वस्तु विज्ञान का रहस्य प्राप्त किये बिना चाहे जितना प्रयत्न किया जाये, चाहे जितने व्रत-नियम-तप-त्याग-वैराग्य-भक्ति-शास्त्राभ्यास किये जायें, तथापि जीव का एक भी भव कम नहीं होता; इसलिये इस मनुष्य भव में जीव का मुख्य कर्तव्य यथार्थतया वस्तुविाान प्राप्त कर लेना है। (—वस्तुविज्ञानसार की प्रस्तावना में से)

(५२) जो चैतन्य का लक्षण नहीं है—ऐसी समस्त बन्धभाव की वृत्तियाँ मुझसे भिन्न हैं... अपनी शक्ति द्वारा जिसने बन्धरहित स्वभाव का निर्णय किया, उसे स्वभाव की रुचि तथा उत्साह आता है कि अहो! यह चैतन्यस्वभाव स्वयं भवरहित है, उसका आश्रय किया, इसलिये अब भाव का अंत निकट आया और मुक्तिदशा की नौबत बजने लगी। अपने निर्णय से जो निःशंकता करे उसे चैतन्यप्रदेशों में उल्लास होता है और अल्पकाल में मुक्तदशा होती ही है।

(५३) दर्शन-ज्ञान-चारित्र की वृद्धि के हेतु हे मुनि! दीक्षा-प्रसंग की तीव्र विरतिदशा को, किसी रोगोत्पत्ति प्रसंग की उग्र वैराग्यदशा को, किसी दुःख प्रसंग पर प्रगट हुई उदासीनता की भावना को, किसी सत् उपदेश के अवसर पर हुई परम आत्मिक भावना को, किसी पुरुषार्थ के धन्य अवसर पर जागृत पवित्र अंतर्भावना को स्मरण में रखना, निरंतर स्मरण में रखना, भूलना नहीं। (भावप्राभृत)

(५४) हे भाई! बाह्य द्रव्यों का तो जैसा होना है, वैसा ही होगा; तेरे ज्ञान का स्वभाव तो जानने का ही है। देखो तो सही, इसमें ज्ञान की कितनी शांति! ज्ञान को कोई विघ्न करनेवाला नहीं

है और कोई सहायक नहीं है। जिसने ऐसे ज्ञानस्वभाव का स्वीकार किया, उसके अभिप्राय में से तो सर्व राग-द्वेष-बंधभाव दूर हो गये अर्थात् अभिप्राय से तो वह मुक्त हो गया; अब उसी अभिप्राय के बल से अल्पकाल में बंधभावों को सर्वथा छेदकर मुक्त होगा।

(५५) जिस भव्य जीव को संसार दु:खदायक भासित हुआ है और उससे छूटकर ज्ञानस्वरूप में आने की अभिलाषा जागृत हुई है, ऐसे मोक्षार्थियों को श्री आचार्यदेव आदेश देते हैं कि—जिनके ज्ञान का अभिप्राय उदार है—ऐसे हे मोक्षार्थी जीवों! तुम एक इसी सिद्धान्त का सेवन करो कि—मैं तो शुद्ध चैतन्यमय एक परमज्योति ही सदैव हूँ, इसके अतिरिक्त अन्य सब भाव में नहीं हूँ, वे सर्व भाव मुझसे भिन्न हैं।' जिसप्रकार बालक के अंतर में उसकी माता का ही रटन होता है.... उसीप्रकार धर्मी जीव के अंतर में 'मेरे सिद्धभगवान, मेरी सिद्धदशा'—ऐसा ही रटन हो रहा है। अपने स्वभाव के अतिरिक्त अन्य किसी भाव से वे संतुष्ट नहीं होते।

(५६) कल्याणमूर्ति सम्यग्दर्शन का अपार माहात्म्य है। गुरुदेव ने कई वर्ष पूर्व राजकोट में श्रीमद् राजचन्द्रजी की जयन्ती के अवसर पर कहा था कि—'सम्यग्दृष्टि बैल की खुरी जिस विष्टा पर पड़े, वह विष्टा भी धन्य है!' प्रत्येक पदार्थ को अपने स्पर्श मात्र से धन्य बनानेवाले सम्यग्दृष्टि महापुरुष की जयन्ती मनाने का यह अवसर हमारे लिये अत्यन्त आनन्दोल्लास का प्रसंग है। [—५९ वें जन्मोत्सव के अवसर पर भाई श्री हिम्मतलाल जे.शाह के भाषण से]

(५७) हे मुनि! आत्मा कल्याणस्वरूप है, उसमें तू अपने मन को लगा। उसे छोड़कर बाहर न जा।

(५८) तीर्थंकरों का पंथ स्वाश्रय का ही है। तीर्थंकरों के उपदेश में सम्पूर्ण स्वाश्रय का ही आदेश है। मोक्षमार्ग में अंशमात्र भी पराश्रय भाव का उपदेश तीर्थंकरों ने नहीं दिया है। जो जीव स्वाश्रय नहीं करता, वह जीव तीर्थंकरों के उपदेश का आशय नहीं समझा है।—ऐसा श्री तीर्थंकरों का पंथ ज्ञानी बतलाते हैं और जगत् के जीवों से कहते हैं कि—हे जगत के जीवों! मोक्ष का मार्ग आत्माश्रित है। तुम पराश्रय को छोड़कर इस स्वाश्रित-मार्ग में नि:शंक होकर चले आओ!

(६०) जीव का अपना निजस्वरूप वीतराग है, वीतराग है, वीतराग है। जो उस वीतरागस्वरूप का बारम्बार कथन करते हैं, वे ही सदा गुरुपद पर शोभा देते हैं। ****श्रीगुरु ज्ञान को स्थिरीभूत करके अपने आत्मा का तो वीतरागस्वरूप अनुभव करते हैं और जब किसी को उपदेश देते हैं, तब अन्य सर्व को दूर करके एक जीव का निजस्वरूप वीतराग है, उसी का बारम्बार

कथन करते हैं। वीतरागस्वरूप के अतिरिक्त अन्य कोई अभ्यास उनको नहीं है। (—आत्मावलोकन)

(६१) श्री कुन्दकुन्द भगवान भव्य जीवों को मोक्ष के लिये आमंत्रित करते हुए कहते हैं कि—हमारे घर मोक्षदशा की रसोई तैयार हो गई है। हम तुझसे जो कुछ कहते हैं, उसे तू स्वीकार कर तो तू मोक्षदशा की थाली पर बैठा है। थाली पर बैठने के पश्चात् मोक्षदशा का भोजन आने में विलम्ब नहीं होगा। अरे, आ तो सही! हाँ तो कह! आत्मा के स्वभावसुख को स्वीकार तो कर!

(६२) समुद्रभर पानी से भी जिसकी तृषा शांत नहीं हुई, उसकी प्यास एक बूँद पानी से नहीं मिट सकती; उसीप्रकार इस जीव ने अनंत बार स्वर्गादि के भोग भोगे, तथापि तृप्ति नहीं हुई; तो सड़े हुए पुतले के समान इस मनुष्य शरीर के भोगों से तो कदापि तृप्ति नहीं होगी; इसलिये भोग के हेतु जीवन बिताने की अपेक्षा मनुष्य जीवन में ब्रह्मचर्य का पालन तथा तत्त्व का अभ्यास करना ही मानव जीवन का उत्कृष्ट कर्तव्य है।

(६३) हे जीवों! अंतर में स्थिर होओ... स्थिर होओ...! अनंत महिमावान शुद्ध आत्मस्वभाव का आज ही अनुभव करो!

(६४) हे भाई! चैतन्य भगवान कैसे हैं, उन्हें देखने का एकबार कुतूहल तो कर। यदि दुनिया में अनुकूलता या प्रतिकूलता में रुकेगा तो तू अपने चैतन्यभगवान को नहीं देख पायेगा; इसलिये संसार का लक्ष छोड़कर, उससे अलग होकर एकबार महान कष्ट से भी तत्त्व का कौतूहली बन।

(६५) अहो! कुन्दकुन्दाचार्यदेव की क्या बात करें? कुन्दकुन्दाचार्यदेव तो भगवान कहलाते हैं। उनका वचन अर्थात् केवली का वचन। अंतर में अध्यात्म के प्याले छलक उठे थे... एकदम केवलज्ञान की तैयारी थी। वीतरागभाव से अंतर में स्थिर होते-होते फिर छद्मस्थदशा में रह गये और विकल्प उठने पर इन समयसारादि महान शास्त्रों की रचना हो गई।—इतना जगत का महाभाग्य था।

(६६) आत्मस्वभाव महिमावान है, वह मोक्षसुख का दाता है, वह स्वानुभव से ज्ञात होता है किन्तु वाणी के विस्तार से ज्ञात नहीं होता। उसे जाननेवाले लाखों-करोड़ों में कोई विरले ही होते हैं। इस जगत में ऐसा आत्मा जयवन्त है और आत्मा को जाननेवाले भी सदैव होते हैं। यद्यपि आत्मा को जाननेवाले विरले ही होते हैं, किन्तु उसका कभी विरह नहीं होता; पूर्वकाल में आत्मा को

जाननेवाले थे, वर्तमान में हैं और भविष्य में होंगे।

(६७) जिन्होंने पूर्वभव में आयु का बंध न किया हो, ऐसे अविरत सम्यग्दृष्टि भी वैमानिक देव अथवा उत्तम मनुष्य में ही जन्म धारण करते हैं, इसके अतिरिक्त अन्यत्र कहीं जन्म नहीं लेते; इसलिये उत्तम देवत्व और मनुष्यत्व—इन दो को छोड़कर शेष समस्त संसार के क्लेश से वे मुक्त हैं, इसलिये संसार के दु:खों से भयभीत ऐसे भव्य जीवों को सम्यग्दर्शन की आराधना में सदैव तत्पर रहना चाहिये।

(६८) हे भाई! एकबार तू ऐसा तो मान कि—मैं ज्ञानस्वरूप ही हूँ.... मेरा ज्ञान, राग में एकमेक नहीं हो जाता। इसप्रकार राग और ज्ञान की भिन्नता को जानकर एकबार तो राग से पृथक् होकर आत्मा के ज्ञान का अनुभव कर। अपने ज्ञानसमुद्र में एकबार तो डुबकी लगा।

(६९) 'आत्मा तणा आनंदमां मशगूल रहेवा इच्छतो,
संसारना दु:खदर्दथी झट छूटवाने इच्छतो;
आपो अनुपम आशरो प्रभु दीनबन्धु देव छो,
शरणे हुं आव्यो आपने तारो प्रभो तारो मने।'

(—बालकों के गुजराती संवाद से)

(७०) आजकल लोगों में जैनधर्म के नाम से जो बात चल रही है, उसके मूल में ही अंतर है। मूल आत्मस्वभाव की दृष्टि के बिना शास्त्रादि से हजारों बातें जान ले, तथापि उनमें एक भी बात सच्ची नहीं होती। पूर्वकाल में मानी हुई सारी बातों को भूलकर सुने तो यह बात अंतर में जम सकती है।

(७१) तू अपने ज्ञान में ऐसा निर्णय कर कि—मेरा ज्ञानस्वरूप सर्व पदार्थों से भिन्न है... अपने ज्ञानस्वरूप आत्मा की ओर उन्मुख हो, उसी का अभ्यास कर, उसकी रुचि कर, उसका मंथन कर, उसकी श्रद्धा कर, उसी का अनुभव कर। निरंतर वही एक करने योग्य है।

(७२) आचार्यदेव आत्मस्वभाव को समझाते हुए कहते हैं कि—जीव-अजीवादि सातों तत्त्वों के विकल्प परद्रव्य हैं, और उन सात तत्त्वों के विकल्पों से अगोचर जो शुद्ध अभेद आत्मस्वरूप है, वही एक स्वद्रव्य है, वही जीव है तथा उसी को अंगीकार करना है। शुद्ध जीव को अंगीकार करने से शुद्धभाव प्रगट होता है। अंगीकार करना अर्थात् उसकी श्रद्धा करना, उसका ज्ञान करना और उसमें लीन होना।

(७३) श्री मुनिराज निस्पृह करुणाबुद्धि से कहते हैं कि—अरे प्राणियों! आत्मा का शुद्धस्वभाव समझे बिना अनंत काल में अन्य सब भाव किये हैं, वे कोई भाव उपादेय नहीं हैं। आत्मा का निश्चयभाव ही उपादेय है—ऐसी श्रद्धा करो!

(७४) **परमपारिणामिकभावरूप निरपेक्ष चैतन्यस्वभाव बतलाकर श्री आचार्यदेव कहते हैं कि भाई! तू ऐसे शुद्ध जीवतत्त्व की श्रद्धा कर... अशुद्ध आत्मा की श्रद्धा तो तूने अनंत काल तक की है और उस मिथ्या श्रद्धा के कारण ही तू संसार में भटक रहा है। इसलिये अब—'परम शुद्ध आत्मा ही मैं हूँ'—ऐसी शुद्धात्मा की श्रद्धा कर, तो तेरे आत्मा में शुद्धभाव प्रगट हो और तेरा अविनाशी कल्याण हो जाये।**

(७५) अहो, आज महावैराग्य का दिन है, परम उदासीनता का प्रसंग है... आज भगवान वीतरागी चारित्रदशा अंगीकार करते हैं। इस आत्मा को भी ऐसी चारित्रदशा के बिना मुक्ति नहीं है... ऐसे अवसर पर स्वयं अंतर में ऐसी भावना कर कि मुझे ऐसी परम वीतरागी निर्ग्रंथदशा कब आयेगी? मैं कब मुनि होकर आत्मध्यान में लीन होऊँगा? मैं कब उन वीतरागी संतों की पंक्ति में बैठूँगा? (—दीक्षाकल्याणक प्रवचन से)

(७६) एकमात्र भेदज्ञान के अतिरिक्त यह जीव अनंत काल में सब कुछ कर चुका है, किन्तु भेदज्ञान कभी एक क्षण भी प्रगट नहीं किया। एक क्षणमात्र का भेदज्ञान अनंत जन्म-मरण का नाश करनेवाला है, इसलिये वह भेदज्ञान निरंतर भावना करनेयोग्य है।

(७७) हे प्रभाकर भट्ट! तू मिथ्यात्वादि शल्यरहित होकर अपने आत्मा को परमात्मा जान। परमात्मा का ध्यान करने को कहा है, वह अपने से भिन्न परमात्मा का नहीं, किन्तु परमात्मा की भाँति अपना स्वभाव परिपूर्ण रागादि रहित है, उसे पहिचानकर उसी का ध्यान करना चाहिये; वही परमात्मा का ध्यान है।

(७८) हे जीव! तू अपने आत्मा को पहिचानकर सर्वात्म में समदृष्टि कर! किसी के प्रति विषमभाव रखने से तुझे क्या प्रयोजन है? सामनेवाला जीव उसके भाव से तरता है और उसके भाव से डूबता है; तू अपने में समभाव रख।

(७९) धर्म, धर्मात्मा के बिना नहीं होता। जिसे धर्म की रुचि हो, उसे धर्मात्मा के प्रति रुचि होती ही है। जिसे धर्मी जीवों के प्रति रुचि नहीं है, उसे धर्म की ही रुचि नहीं है। जिसे धर्म की रुचि हो, उसे अन्य धर्मात्माओं के प्रति अरुचि या ईर्ष्या नहीं होती... किन्तु अंतर से प्रमोद जागृत होता है

कि अहा! धन्य है इन धर्मात्मा को! उसे दूसरे धर्मात्माओं को देखकर हर्ष होता है।

(८०) धर्मी जानता है कि जगत के कोई संयोग मुझे इष्ट-अनिष्ट नहीं हैं, मैं तो असंयोगी, राग-द्वेष रहित ज्ञायक मुक्तस्वरूप हूँ।—ऐसी स्वभावदृष्टि में पूर्वकर्मरूपी चोर मेरा कुछ भी करने में समर्थ नहीं है।

(८१) जो पुरुष इस शुद्धात्मा को जानकर उसके ध्यान में स्थिर रहता है, उसकी तो बात ही और है, किन्तु जो पुरुष शुद्धात्मा की चिन्ता का परिग्रह करनेवाला है, उसका भी जीवन इस संसार में प्रशंसनीय है तथा देवों द्वारा भी वह पूज्य है; इसलिये भव्य जीवों को सदा शुद्धात्मा का चिंतवन करना चाहिये।

—श्री शत्रुंजय पर्वत से युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन—यह तीनों पांडव तथा दूसरे आठ करोड़ मुनिवर मोक्ष पधारे हैं। संवत् २००६ में सौराष्ट्र में जगह-जगह विहार और धर्म-प्रभावना करके लौटते समय पूज्य गुरुदेवश्री शत्रुंजय सिद्धक्षेत्र की यात्रा के लिये पधारे थे और प्रथम अषाढ़ शुक्ला चतुर्थी के दिन मुमुक्षु संघ सहित सिद्धक्षेत्र की यात्रा की थी।

(८२) जिसका महाभाग्य हो, उसे यह तत्त्व श्रवण प्राप्त होता है और अपूर्व पात्रता से आत्मपुरुषार्थ करे तो परमार्थ की प्राप्ति होती है.... ज्ञानस्वभावी आत्मा की रुचि करना ही कल्याण का पंथ है। स्वतंत्र रुचि बदलने का प्रयत्न स्वयं न करे तो अन्य कोई कराने में समर्थ नहीं है।

(८३) भाद्रपद शुक्ला पंचमी से चतुर्दशी तक के दस दिनों को 'दसलक्षण पर्व' कहा जाता है। सनातन जैन शासन में उसी को 'पर्यूषण पर्व' कहते हैं। शास्त्रों में प्रति वर्ष तीन बार दसलक्षण पर्व के आने का उल्लेख है, किन्तु वर्तमान में भाद्रपद मास में ही उसकी प्रसिद्धि है। वीतरागी जिनशासन में इस धार्मिक पर्व की अपार महिमा है।

(८४) जिसमें वास्तव में सुख हो, उसमें चाहे जितना आगे बढ़ने पर भी कभी अरुचि उत्पन्न नहीं होती; स्वभाव में सुख है, तो उसमें ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते हैं, त्यों-त्यों सुख की वृद्धि होती है... उसमें अरुचि उत्पन्न नहीं होती... और विषय-सुखों में अरुचि उत्पन्न हुए बिना नहीं रहती... विषयों में सुख नहीं है किन्तु आत्मस्वभाव में ही सुख है।—उस स्वभाव सुख का निर्णय करके उसे स्वीकार कर और विषयों में सुख की बुद्धि छोड़ दे।

(८५) हे जीव...! अपने आत्मा में सिद्धत्व की स्थापना करके—निर्णय कराके, आत्मस्वभाव का वर्णन करते हुए आचार्यदेव मोक्ष की मंडली बनाते हैं; तू भी आत्मा की

रुचिपूर्वक स्वीकार करके मोक्षमंडल में सम्मिलित हो जा।

(८६) जिसप्रकार रणभेरी सुनकर राजपूत के साढ़े तीन करोड़ रोमों में शौर्य उछलने लगता है; उसीप्रकार तत्त्वों की महिमा सुनकर पात्र चैतन्य का वीर्य उछल पड़ता है... स्वतंत्रता की बात सुनकर हे जीव! उसकी महिमा ला! श्री कुन्दकुन्द भगवान समयसार की भेरी बजाकर गीत गाते हैं... उसे सुनकर तुझमें शौर्य न उछले—यह कैसे हो सकता है?

(८७) समस्त पदार्थों के उत्पाद-व्यय-ध्रुवस्वभाव का निर्णय करने पर स्व में या पर में परिवर्तन करने की बुद्धि नहीं रही, किन्तु ज्ञान में जानने का ही काम रहा। इसलिये ज्ञान में से 'ऐसा क्यों?'—यह खलबली निकल गई और वह धीर-गम्भीर होकर अपने में स्थिर हुआ—इसी में ज्ञान का पुरुषार्थ है; इसी में मोक्षमार्ग का तथा केवलज्ञान का पुरुषार्थ आ जाता है। पर में कर्तृत्वबुद्धिवाले को ज्ञानस्वभाव की प्रतीति नहीं हो पाती और उसे ज्ञान के स्वभाव का—ज्ञायकपने का—पुरुषार्थ भी प्रगट नहीं होता।

(८८) हे जीव! ठहर.. ठहर..! भाई, अनंत काल में दुर्लभ यह मनुष्य जीवन मिला, और उसमें महा मूल्यवान सत्समागम तथा सत्श्रवण की प्राप्ति हुई; फिर भी तू अपने स्वतंत्र स्वभाव को न माने, यह कैसे चल सकता है?

(८९) विदेहवासी हे सीमंधरनाथ! जब से आप 'सुवर्णपुरी' में.... अथवा भक्तों के अंतर में पधारे... तब से इस भरतक्षेत्र के जिनेन्द्र-शासन में अनेकप्रकार की मंगलवृद्धि हुई है। हे प्रभो! हम आपका क्या-क्या सन्मान करें? किसप्रकार आपका स्वागत किया जाये...? हे नाथ! आपके महान स्वागत के इस पवित्र महोत्सव में साथ देने के लिये यह 'स्वागत-अंक' आपके चरणों में अर्पित करते हैं... आपका बहुत-बहुत सन्मान करते हैं... आपका भक्ति पुष्पों से स्वागत करते हैं। (—हम हैं आपके सुवर्णपुरी-निवासी भक्त।)

(९०) माहात्म्य करने योग्य जगत में कुछ हो तो वह सर्वज्ञप्रणीत धर्म और धर्मात्मा ही है।

(९१) **जिस जीव का एक-एक क्षण आत्मार्थ में ही व्यतीत होात हो, जिसका एक-एक पल संसार को छेदने के लिये छैनी का कार्य कर रहा हो, जिसकी एक-एक घड़ी आत्मा को सिद्धत्व की ओर ले जाती हो, वह जीवन धन्य है... कृतकृत्य है!**

अहा! संत ऐसा कृतकृत्य जीवन जीते हैं।

जिन परम संतों की शरण में ऐसा जीवन-निर्माण होता है—वे संत जयवंत हों!

(९२) गाँव में एक किसान पूछता था कि—'महाराज! आत्मा अवतारों में भटकता फिर रहा है; उस भ्रमण का अंत आये और मुक्ति मिले—ऐसा कोई उपाय बतलाइये।'

हे भाई! अब तुझे जन्म-मरण की थकावट का अनुभव होता है? यदि होता हो तो उस जन्म-मरण से छूटने के लिये चैतन्य शरण को जानकर उसके आश्रय से विश्राम कर। जिसे अंतर में भवभ्रमण का दु:ख हो रहा हो, वह जीव चैतन्य की शरण ढूँढ़ता है।

(९३) मुझे आत्मा का कल्याण करना है—ऐसी जिसे जिज्ञासा जागृत हुई है, विषय कषायों से किंचित् विमुख होकर जो नवतत्त्वों का विचार करता है तथा अंतर में आत्मा का अनुभव करना चाहता है, उसकी यह बात है। ×××भाई! पूर्वकाल में जो नवतत्त्व के विचार किये, उनकी अपेक्षा यह कुछ भिन्न प्रकार की बात है। पूर्वकाल में जो नवतत्त्व के विचार किये; अभेदस्वरूप के लक्ष बिना किये हैं और वहाँ तो अभेदस्वरूप के लक्षसहित की बात है।

(९४) जिसे आत्मा का लक्ष नहीं है, वह चाहे जितने शास्त्र पढ़े; तथापि वह सब शास्त्रपठन मन के भाररूप है; अंतर में चैतन्यपद की सुगंध उसे नहीं आती.... आत्मा की शांति का अनुभव उसे नहीं होता।

(९५) साधक जीव भी ज्ञानस्वभाव की एकता की दृष्टि में राग का कर्ता नहीं है, किन्तु ज्ञायक ही है। इसप्रकार, ज्ञायकस्वभाव का निर्णय करना, उसका नाम धर्म है; वही प्रत्येक आत्मार्थी—मोक्षार्थी जीव का प्रथम कर्तव्य है।

(९६) अहो! यह स्वभावदृष्टि की बात आजकल लोगों के लिये बड़ी महँगी हो गई है; किन्तु जैनधर्म का मुख्य आधार तो यही है।—ऐसी दृष्टि प्रगट किये बिना जितना करे, वह सब संसार का ही कारण होता है; इस दृष्टि के बिना मोक्षमार्ग के प्रारम्भ का अंश भी नहीं होता।

(९७) वीर संवत् २४७७ के नूतनवर्ष के सुप्रभात में मंगल-संदेश देते हुए पूज्य गुरुदेव ने कहा था कि—आत्मा के परमपारिणामिकस्वभाव की महिमा करना ही आत्मा के नूतनवर्ष का प्रारम्भ है... उस स्वभाव में से ही सर्व निर्मल पर्यायें आती हैं; इसलिये उसकी महिमा... उसकी रुचि... और उसमें सन्मुख होकर लीनता ही आत्मार्थी जीवों का कर्तव्य है।

(९८) श्री समयसार के प्रारम्भ में ही आचार्यदेव आत्मा में सिद्धत्व की स्थापना करते हैं—अहा! सिद्ध भगवन्तों! मेरे हृदयस्थान में विराजो... मैं सिद्धों का आदर करता हूँ।—इसप्रकार अपने आत्मा में सिद्धत्व की स्थापना करना, वह धर्म का अपूर्व मंगल-प्रारम्भ है।

(९९) सम्यग्दर्शन प्रगट करनेवाले जीव को देशनालब्धि अवश्य होती है, और वह देशनालब्धि, सम्यक्त्वरूप से परिणमित ऐसे साक्षात् ज्ञानी के निमित्त से ही प्राप्त होती है। अकेले शास्त्रस्वाध्याय से या मिथ्यादृष्टि के निमित्त से देशनालब्धि प्राप्त नहीं होती।

(१००) सम्यग्दर्शन प्रगट होने पर आत्मा का अनुभव होता है। जैसा अनुभव सिद्ध भगवान को होता है, वैसा ही चौथे गुणस्थान में सम्यक्त्वी जीव को होता है। सिद्धों को पूर्ण अनुभव होता है और सम्यक्त्वी को अंशतः, किन्तु अनुभव का प्रकार तो वही है। सम्यक्त्वी आनंदसागर के अमृत का अपूर्व स्वाद ले रहा है, आनंद-सरोवर में केलि कर रहा है।

(१०१) जिसे वास्तव में आत्मा को तृप्त करने की अभिलाषा जागृत हुई है, वह उसे तृप्त करके ही रहेगा और आत्मा को तृप्त होना पड़ेगा अर्थात् आनन्दधाम में पहुँचना ही पड़ेगा। यहाँ जगत के जीवों को तृप्त करने की बात नहीं है, किन्तु जो अपना हित चाहता हो, उसे हित का मार्ग समझाया गया है।

(१०२) अनाकुल जिसका लक्षण है—ऐसी सुखशक्ति आत्मा में त्रिकाल है। कुछ भी करने की वृत्ति का उत्थान, वह आकुलता है और आकुलता, वह दुःख है। अशुभ या शुभ किसी भी वृत्तिरहित निराकुल दशा ही सुख का स्वरूप है।

(१०३) छठवीं गाथा में श्रीगुरु के निकट जाकर महाविनय और पात्रतापूर्वक ज्ञायकस्वरूप का श्रवण करके वैसा अनुभव करने के लिये अंतर्मंथन करते-करते 'मैं ज्ञायक हूँ'—ऐसा लक्ष में लेने गया; किन्तु उसमें गुणगुणीभेद का विकल्प उठा... गुणगुणीभेद के विकल्प से भी आगे कोई अभेद वस्तु है, उसे लक्ष में लेकर उसका अनुभव करने के लिये अंतर की गहराई में उतरता जाता है और वह बात श्रीगुरु के मुख से सुनने के लिये विनय से पूछता है कि—प्रभो! ज्ञान-दर्शन, चरित्र के भेद से आत्मा को लक्ष में लेते हुए गुणगुणीभेद का विकल्प उठता है और अशुद्धता का अनुभव होता है, तो क्या किया जाये?—श्री आचार्य भगवान भी शिष्य की अत्यन्त निकट पात्रता देखकर उसे शुद्धात्मा का स्वरूप समझाते हैं....

(१०४) साधक संत आत्मा के आनन्द रस में लीन रहते हैं। आत्मस्थिरता कैसे बढ़ती रहे, उसकी उन्हें धुन है... आत्मज्ञानी संत गृहवास में रहने पर भी अंतर से उदास... उदास होते हैं। अहो! उनकी अंतर दशा की क्या बात कहें!

(१०५) अहो... धन्य है वह पावनभूमि विपुलाचल... आज से २५०६ वर्ष पूर्व उस

तीर्थभूमि पर तीर्थंकरदेव की ॐकारध्वनि का नाद गूँजता था... और गणधरादि संत उसे झेलकर पावन होते थे... उन पवित्र प्रसंगों का महान दिवस अर्थात् श्रावण कृष्णा प्रतिपदा... केवलज्ञान के साथ संधि करके भव्यजीव उनका महोत्सव मनाते हैं।

(१०६) जीव को मुख्य में मुख्य और अवश्य में ऐसा निश्चय रखना चाहिये कि कुछ मुझे करना है, वह आत्मा को कल्याणरूप हो, वही करना है।

(१०७) 'धर्म का मूल सर्वज्ञ है'; उस सर्वज्ञता के निर्णय में बड़ी गम्भीरता भरी है। यहाँ, प्रत्येक आत्मा में विद्यमान सर्वज्ञत्वशक्ति के प्रवचन में पूज्य गुरुदेव ने जैनधर्म के अनेक मूलभूत रहस्य प्रकाशित किये हैं।

(१०८) अरे मूढ़! तू व्यवहार के आश्रय से लाभ होना मानता है, किन्तु व्यवहार का आश्रय तो तू अनादि से कर ही रहा है, तथापि क्यों कल्याण नहीं हुआ? इसलिये समझ कि व्यवहार के आश्रय से कल्याण नहीं होता। भूतार्थ स्वभाव के आश्रय से ही कल्याण होता है... संतों ने जीवों के कल्याणार्थ पुनः पुनः उसी के आश्रय का उपदेश दिया है।

(१०९) कोई पूछे कि पहले हमें क्या करना चाहिये?—तो ज्ञानी कहते हैं कि—'मैं ज्ञानस्वरूप हूँ'—ऐसा अंतर में निर्णय करके उसको अनुभव करना चाहिये। यही जैन शासन में प्रत्येक जीव का प्रथम कर्तव्य है।

(११०) 'मैं ज्ञानस्वभाव ही हूँ', अपने स्वभाव में अंतर्मुख होकर स्थिर होऊँ वही मेरी मुक्ति का मार्ग है। इसके अतिरिक्त कहीं बाह्य में नहीं देखना पड़ता। कैसा स्वावलम्बी, सरल और सहज मुक्तिमार्ग!!—ऐसे सहज मुक्तिमार्ग पर स्वयं विचरनेवाले और जगत् को वह पावन मार्ग दिखानेवाले, हे संतों! आपके चरणों में परम उल्लासभाव से नमस्कार हो।

(१११) जिनशासन का अर्थ क्या और जिनशासन को किसने जाना कहा जाता है—वह बात समयसार की पन्द्रहवीं गाथा में अद्भुत ढंग से कही गई है। उसमें भरा हुआ जैनशासन का अतिशय महत्त्वपूर्ण रहस्य पूज्य गुरुदेव ने अपने प्रवचन में स्पष्ट किया है। सभी जिज्ञासुओं तथा विद्वानों को उस गाथा के रहस्य पर भलीभाँति विचार करना चाहिये।

(११२) चाहे जैसे संयोगों में तथा चाहे जैसी प्रवृत्ति में लीन होने पर भी चौबीस घंटों में से घंटे-दो घंटे का समय तो स्वाध्याय-मनन में लगाना ही चाहिये। अरे, अधिक नहीं तो कम से कम प्रतिदिन पन्द्रह मिनट निवृत्ति लेकर एकांत में शांति पूर्वक आत्मा का ध्यान एवं विचार करना ही

चाहिये। प्रतिदिन पन्द्रह मिनट समय निकाले तब भी, महीने में साढ़े सात घंटे स्वाध्याय-आत्मचिंतन हो सकता है। प्रतिदिन स्वाध्याय-मनन करने से अंतर में उसके संस्कार बने रहते हैं और दृढ़ता में वृद्धि होती रहती है।... इसलिये आत्मार्थी जीवों को 'मानों मैं तो जगत से भिन्न हूँ, जगत के साथ मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है, जगत के किसी कार्य का बोझ मेरे ऊपर नहीं है, मैं तो असंग चैतन्यतत्त्व हूँ'—इसप्रकार निवृत्त होकर घड़ी-दो घड़ी भी अपने आत्मा का चिंतन-मनन करना आवश्यक है। (-रात्रिचर्चा से)

(११३) अहो! आत्मभावना करके संत निजस्वरूप में स्थिर होते हैं... उन्हें जगत की ओर देखने का अवकाश ही कहाँ है? संतों को तो आत्मा की ही धुन लगी है... अशरीरी चैतन्य की भावना भाने से भव का अभाव हो जाता है। भाई! पर की भावना भाने में तो तेरा अनंत काल व्यतीत हो गया... अब ऐसे चैतन्य की महिमा जानकर उसकी भावना तो कर! उसकी भावना से तेरे भव का अंत आ जायेगा।

(११४) व्यवहार तो भूसे जैसा है, मूल परमार्थ वस्तु निश्चय है; जो परमार्थ वस्तु को नहीं जानते और दया-दान-व्रतादि के शुभ व्यवहार में ही जिनका आत्मा अर्पित हो गया है, वे पुरुष अनाज को छोड़कर भूसे को कूट रहे हैं... ज्ञानी तो अंतर में आत्मा के परमार्थस्वरूप को जानते हैं व्रतादि का राग आये तो उसे वे मोक्षमार्ग नहीं मानते।

(११५) भक्तों के हृदय में पिछले दस वर्ष से यह भावना थी कि सोनगढ़ में एक मानस्तम्भ का निर्माण करवाया जाये। फाल्गुन शुक्ला पंचमी को मानस्तम्भ का आर्डर दिया गया... चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन नींव डाली गई और ज्येष्ठ कृष्णा सप्तमी को शिलारोपण विधि हुई... भक्तजन स्वयं अपने हाथ से काम करके अपना उल्लास व्यक्त करते थे। उस समय भक्तों को मानस्तम्भ की लगन लग रही थी... रेलवे वेगन आने के समाचार मिलते ही चारों ओर हर्ष छा जाता था... मानस्तम्भ के छोटे-बड़े हर एक हिस्से को भक्तजन देखते और प्रसन्न होते थे... चैत्र शुक्ला दसवीं का प्रतिष्ठा मुहूर्त निश्चित हुआ... उस महोत्सव का आनन्द—उसकी महिमा अद्भुत थी... कोई कोई तो कहते थे—'ऐसा लग रहा है जैसे हम विदेहधाम में आ गये हों!'' .....महोत्सव आदि के उल्लास पूर्ण संस्मरणों को सुनना भी एक महान सौभाग्य है।

(११६) आत्मा के भूतार्थ स्वभाव के आश्रय से ही मोक्षमार्ग का प्रारम्भ होता है। 'पहले व्यवहार और फिर निश्चय'—ऐसा माननेवाले के तथा अनादि मिथ्यादृष्टि जीव के अभिप्राय में

कोई अंतर नहीं है, दोनों व्यवहार मूढ़ हैं।—इस सम्बन्ध में दिगम्बर तथा श्वेताम्बर मतों के बीच महान दृष्टि भेद है; उसका पूज्य गुरुदेव ने मुख्यतः स्पष्टीकरण किया है। प्रत्येक जिज्ञासु जीव को यह विषय भलीभाँति समझना चाहिये।

(११७) अहो, सम्यग्दर्शन तो जगत में अपूर्व अचिंत्य महिमावान वस्तु है; सम्यग्दर्शन होते ही सारा परिणमन पलट जाता है। जिसे सम्यग्दर्शन हुआ उसके चैतन्य-आँगन में मुक्ति का मण्डप लग गया; उसके आत्मा में सिद्धभगवान का संदेश आ गया। ऐसा सम्यग्दर्शन प्रगट करने का उपाय इस लेख में पढ़ें।

(११८) मुनिदशा की महिमा अलौकिक है। अहो! मुनिरवर तो केवली भगवान के पड़ोसी हैं; वे पंच परमेष्ठी-पद में मिल गये हैं और केवलज्ञान लेने की तैयारी में हैं... मानों अभी-अभी श्रेणी लगाकर केवलज्ञान ले लिया अथवा लेंगे... ऐसी उनकी आत्मजागृति है। उस धन्य दशा में दुःख या क्लेश नहीं है किन्तु सिद्धभगवान जैसा अपूर्व महाआनन्द है। अहो! धन्य हैं वे मुनिवर! संयम सुधा-सागर में डूबे हुए उन संतों को नमस्कार हो।

(११९) भगवान की दिव्यध्वनि तो अमोघ वाणी है; वह कभी निरर्थक नहीं जाती... उसे झेलकर धर्मवृद्धि करनेवाले जीव अवश्य होते ही हैं। वह वाणी कानों में पहुँचते ही पात्र श्रोता को ऐसा लगता है कि अहो! मुझे ऐसी अपूर्व वाणी प्राप्त हुई है तो मैं निश्चय ही अपनी पात्रता से समझकर अल्पकाल में मुक्त होऊँगा।—इसप्रकार जो अंतर से स्वीकार करके यथार्थ बात को समझ जाते हैं, उन्हीं श्रोताओं को यहाँ लिया है.... धन्य है ऐसे श्रोताओं को... उनका अवश्य कल्याण हो जाता है।

(१२०) आज इस अंक के साथ 'आत्मधर्म' के १० वर्ष पूर्ण हो रहे हैं... इस अवसर पर सर्व जिज्ञासुओं से हृदयपूर्वक इतना ही कहना है कि आत्मधर्म में जो कुछ प्रकाशित होता है, वह इस वर्तमान काल में पूज्य गुरुदेव हमें तीर्थंकरों के उत्तराधिकार की एक अमूल्य भेंट दे रहे हैं—ऐसा समझकर गुरुदेव के प्रति अत्यन्त भक्तिभावपूर्वक उसका स्वाध्याय-मनन करके अंतर में परिणमित करने का प्रयत्न करना चाहिये।

(१२१) 'हे सखा! चल न मेरे साथ मोक्ष में!' अतीन्द्रिय-आनन्द में झूलते हुए मुनिराज स्वयं तो अंतरस्वरूप के अवलम्बन से मोक्ष की साधना कर रहे हैं और श्रोता से भी कहते हैं कि हे सखा! तू भी मेरे साथ मोक्ष में चल न!! हमारा श्रोता हमसे पृथक् रह जाये, यह कैसे हो सकता है?

(१२२) सर्वज्ञ जिनशासन का सार क्या ?—तो कहते हैं कि ज्ञानस्वरूप शुद्ध आत्मा सर्व जिनशासन का सार है। आत्मा का स्वभाव क्या, विकार क्या और पर क्या—इन तीनों को जानकर विकार और पर से भिन्न ऐसे शुद्ध आत्मस्वभाव में अंतर्मुख होकर एकाग्र होना, वह जैनशासन है। जिसने शुद्ध आत्मा को जाना, उसने सर्व जिनशासन को जान लिया।

(१२३) कई लोग पूछते हैं कि—मनुष्य का कर्तव्य क्या ?—मानवधर्म क्या ? उसके उत्तर में गुरुदेव कहते हैं कि अरे भाई! सर्व प्रथम तो 'मैं मनुष्य हूँ'—ऐसी मान्यता ही महान भ्रम है। मनुष्यभव तो संयोगी पर्याय है—जीव-पुद्गल के संयोगरूप असमानजातीय पर्याय है, वह आत्मा का स्वरूप नहीं है। मनुष्यपर्याय मैं नहीं हूँ, मैं तो ज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ—ऐसा समझना, वह आत्मा का प्रथम कर्तव्य है और वही प्रथम धर्म है। मनुष्यभव पाकर करने योग्य हो तो यही है। इसके अतिरिक्त 'मैं मनुष्य ही हूँ'—ऐसा मानकर जो कुछ क्रियाकलाप किया जाये, वह सब व्यवहारमूढ़ अज्ञानी जीवों का व्यवहार है।

(१२४) जैनधर्म का क्रम यह है कि—पहले सम्यग्दर्शन होता है और तत्पश्चात् ही सम्यक्चारित्र होता है, और वह सम्यग्दर्शन भी निश्चयस्वभाव के अवलम्बन से ही होता है। उसके बदले जो सम्यग्दर्शन के बिना चारित्र माने, अथवा तो पहले व्यवहार करते-करते उससे निश्चय श्रद्धा-ज्ञान हो जायेगा—ऐसा माने, वह जैनधर्म के क्रम को नहीं जानता।

(१२५) 'अहो! यह पर से भिन्न मेरे ज्ञायकतत्त्व की बात है, अपने ज्ञायकतत्त्व की प्रतीति करने में किसी राग का अवलम्बन है ही नहीं'—ऐसे लक्षपूर्वक अर्थात् स्वभाव के उल्लासपूर्वक एकबार भी जो जीव यह बात सुने, वह भव्य अवश्य अल्पकाल में मुक्ति प्राप्त करता है।

(१२६) कोई ऐसा कहे कि—हम पुरुषार्थ तो बहुत करते हैं किन्तु सम्यक्त्व नहीं होता; तो ज्ञानी कहते हैं कि—अरे भाई! तेरी बात झूठी है। यथार्थ कारण दे और कार्य न बने—ऐसा नहीं हो सकता। यदि कार्य प्रगट नहीं होता तो समझ ले कि तेरे प्रयत्न में भूल है। सम्यग्दर्शन होने की जो रीति है, तदनुसार अंतर में यथार्थ प्रयत्न करे और सम्यग्दर्शन न हो—ऐसा हो ही नहीं सकता।

(१२७) सुप्रभात के प्रकाश में मेरु पर विराजमान प्रभुजी का दृश्य अत्यन्त भव्य लग रहा था। उससमय भगवान को देखते हुए ऐसी भावना होती थी कि—अहो नाथ! धन्य है आपका जन्म! इसी भव में आत्मा के पूर्ण हित को साधकर आप तीर्थंकर होंगे... और जगत् के अनेक भव्य-जीवों का उद्धार करेंगे। यह आपका अंतिम अवतार है। उन बाल-प्रभुजी को देखकर भक्तों को अति आनन्द हो रहा था।

(१२८) हे जीव! एक क्षण भी अपने स्वरूप का विचार तो कर! शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्मा के चिंतवन के अतिरिक्त अन्य पदार्थों की चिन्ता व्यर्थ है। शरीर से भिन्न मेरा चिदानन्दस्वरूप क्या है—उसका हे जीव! तू विचार कर।

(१२९) **स्वरूप की प्राप्ति सुगम है; पर को अपना करना असम्भव है।**

(१३०) जिसने अपने ज्ञानानन्दस्वभाव के सन्मुख होकर उसकी सम्यक्प्रतीति की—ज्ञान किया तथा उसमें एकाग्रता की, उसने करने योग्य अपूर्व कार्य किया, इसलिये वह कृतकृत्य हुआ... हे भाई! एकबार तो अंतर्मुख होकर स्वभाव का निर्णय कर, तथा अनंत काल में जो नहीं किया है, ऐसा अपूर्व कार्य प्रगट कर।

(१३१) 'उपयोगस्वरूप आत्मा' और 'क्रोधादिस्वरूप आस्रव'—इन दोनों का यथार्थ भेदज्ञान होने से जीव अपने उपयोगस्वरूप आत्मा में ही एकता करके अपने शुद्ध उपयोगभाव को ही करता है, परन्तु शुद्ध उपयोग के अतिरिक्त क्रोधादिभावों को अपने में किंचित् नहीं करता, इसलिये उसे उन क्रोधादिक का संवर होता है।—इसप्रकार भेदज्ञान से ही जीव को संवर होता है, इसलिये वह भेदज्ञान अत्यन्त प्रशंसनीय है। ऐसे भेदज्ञान को छोड़कर अज्ञानी जीव चाहे जितने व्रतादिक करें, तथापि वह प्रशंसनीय नहीं है।

(१३२) 'अहो! अंतर में परम चैतन्यतत्त्व है, उसे जगत के जीव समझें और आत्मानन्द की प्राप्ति करें!'—ऐसा विकल्प संतों को उठा... ज्ञान के अंतर्मुख होने से अंतर में चैतन्य की झंकार उठी... वहाँ चैतन्यतत्त्व लक्ष में आता है और उसके अपूर्व आनन्द का अनुभव होता है।—इसलिये हे जीव! शुद्ध चैतन्यतत्त्व पर ही लक्ष का भार देकर उसी को ध्येय बनाना।

(१३३) अपने सर्वज्ञस्वभाव की प्रतीति करके भगवान के भक्त कहते हैं कि—हे भगवान! आप तो आत्मा के अतीन्द्रिय परम आनन्द के पूर्ण भोक्ता हो गये और हमारे लिये भी थोड़ा-सा प्रसाद छोड़ गये हैं। हे भगवान! आपकी प्रसन्नता से हमें भी आपके अतीन्द्रिय आनन्द का प्रसाद मिला है... इसप्रकार सम्यक्त्वी भक्तिपूर्वक भगवान के आनन्द का प्रसाद मानता है।

(१३४) आत्मा के अतीन्द्रिय सुख का स्पर्श करके बाहर आनेवाली, भेदज्ञान की झनझनाहट उत्पन्न करनेवाली तथा मुमुक्षुओं के हृदय को आन्दोलित करनेवाली पूज्य गुरुदेव की पवित्र वाणी में 'ज्ञायकोन्मुख करनेवाले क्रमबद्धपर्याय के प्रवचनों' की जो अद्भुत अमृतधारा एक सप्ताह तक बरसी, वह आत्मधर्म के गतांक में आ चुकी है... तत्पश्चात... दूसरी बार वैसी

अमृतधारा बरसी... वह अमृतधारा यहाँ (गुज० आत्म० अंक १३४-३५ में) दी गई है।

(१३५) ज्ञायकस्वभाव के निर्णय के पुरुषार्थ द्वारा ही क्रमबद्धपर्याय का स्वरूप यथार्थतया समझ में आता है। जो जीव ज्ञायकस्वभाव के निर्णय पुरुषार्थ नहीं करता, उसे क्रमबद्धपर्याय का भी निर्णय नहीं होता। इसप्रकार ज्ञानस्वभाव की ओर से प्रारम्भ करे, तभी यह बात यथार्थरूप से समझ में आ सकेगी। और जो जीव इसप्रकार इसे समझ लेगा, उसे आत्महित का महान लाभ होगा... पंच परमेष्ठी भगवान ही हमारे 'पंच' हैं। अज्ञानीजन अन्य विपरीत मानते हैं तो भले मानें, किन्तु यहाँ तो पंच परमेष्ठी भगवंतों को पंचरूप में रखकर यह बात कही जा रही है। जिसे पंच परमेष्ठीपद में सम्मिलित होना हो, उसे यह बात अवश्य माननी होगी।

(१३६) बहुत से लोग प्रतिदिन 'णमोकार मन्त्र' का जाप करते हैं, किन्तु उस मन्त्र में जिन पंच परमेष्ठी भगवंतों को नमस्कार किया गया है, उनका स्वरूप नहीं जानते। जिन्हें वे नमस्कार करते हैं, उनका स्वरूप जाने बिना प्रयोजन की सिद्धि कहाँ से होगी? मैं किसे नमस्कार करता हूँ और किसलिये करता हूँ—उसे समझे तो प्रयोजन की सिद्धि हो।

(१३७) हे भाई! जगत के लोग इकट्ठे होकर तेरी प्रशंसा करें या अभिनन्दन-पत्र दें, तो उससे तेरे आत्मा का हित नहीं हो सकता। अपने चिदानन्दस्वभाव की ओर उन्मुख होकर उसके अतीन्द्रिय-आनन्द का अनुभव करना, वह आत्मा का सच्चा अभिनन्दन और उसी में तेरा हित है।

(१३८) परम प्रभावक पूज्य गुरुदेव के पुनीत प्रताप से तीर्थधाम सोनगढ़ में त्रेसठ फीट ऊँचे भव्य मानस्तम्भ का निर्माण हुआ। उस भव्य मानस्तम्भ की शोभा निहारते हुए भक्तजनों को अति आनन्द होता है और अंतर में ऐसी ऊर्मि जागृत होती है कि—अहो! मानो महाविदेह का मानस्तम्भ ही सामने खड़ा है... इस पावन मानस्तम्भ की छाया में आते ही हृदय में शांति की लहरें उठने लगती हैं... और वह भक्ति से नम्र होकर पुकार उठता है कि—अहा! धन्य है इस जिनेन्द्र वैभव को...! धन्य है यह मानस्तम्भ! धन्य है यह महोत्सव!

(१३९) हे जीव! यदि तुझे आनन्दमूर्ति आत्मा की आवश्यकता हो तो सारे संसार को 'हराम' समझ कि—अब मुझे इस संसार की स्वप्न में भी आवश्यकता नहीं है। अरे, अब इस दुःखमय संसार से बस हो... बस हो...! मुझे इसकी कोई आवश्यकता नहीं।—इसप्रकार संसार की रुचि छोड़कर आत्मा की अभिलाषा रखनेवाले जीव को आत्मा की प्राप्ति होगी।

(१४०) शुद्धोपयोग के प्रसाद से जीव स्वयमेव ही स्वभाव से परिणमित होकर

केवलज्ञानरूप होता है, इसलिये वह 'स्वयंभू' है। उसकी प्रशंसा करके आचार्यदेव समझाते हैं कि हे जीव! शुद्ध आत्मस्वभाव की प्राप्ति के लिये अपने स्वभाव के अतिरिक्त अन्य किन्हीं साधनों के साथ सचमुच तेरा सम्बन्ध नहीं है; अपने धर्म के लिये शुद्ध अनंत शक्तिवान तेरा ज्ञानस्वभाव ही साधन है।

(१४१) हे धर्मी जीवों! हे मोक्षार्थी जीवों! यदि आत्मा की शांति चाहते हो और भवभ्रमण से छूटना हो तो शुद्ध द्रव्य का आश्रय करके मोक्षमार्ग में आरोहण करो।

(१४२) जिसे शुद्ध आत्मा को समझने की अभिलाषा जागृत हुई है—ऐसे जिज्ञासु जीव को विचार आता है कि शुद्ध आत्मा का स्वरूप कैसा होगा?—और जिसे आत्मा को समझने की सच्ची उत्कंठा हो, उसे समझने का मार्ग भी अंतर में मिल ही जाता है; अपनी तीव्र अभिलाषा के बल से वह अंतर में मार्ग ढूँढ़कर आत्मस्वरूप को प्राप्त कर ही लेता है।

(१४३) **साधकदशा में निश्चय के साथ-साथ व्यवहार भी होता है, तथापि साधक का (और सर्व शास्त्रों का) तात्पर्य तो वीतरागभाव ही है, तथा वह वीतरागभाव निश्चय के आश्रय से ही होता है, इसलिये निश्चय के आश्रय से ही वास्तव में मोक्षमार्ग है; साधक को शुभरागरूप व्यवहार होता है किन्तु वह वास्तव में मोक्षमार्ग नहीं है, उसे मोक्षमार्ग कहना तो मात्र उपचार है।**

*** अरे भाई! तुझे ऐसा नहीं लगता कि आत्मा में दृष्टि डालने से शांति का वेदन होता है और बाह्य में देखने से अशांति का! इसलिये निश्चय कर कि शांति का-सुख का-आनन्द का क्षेत्र तुझमें ही है, तुझसे बाहर कहीं सुख-शांति या आनन्द नहीं है... नहीं है... नहीं है।**

(१४४) सर्वज्ञ की आज्ञा है कि हे जीव! यदि तुझे सचमुच मेरा आदर करना हो तो तू ज्ञानस्वभाव का आदर कर... और राग का आदर छोड़... जिस जीव ने अपने ज्ञानस्वभाव की ओर उन्मुख होकर सम्यक्श्रद्धा-ज्ञान प्रगट किये हैं, वह जीव सर्वज्ञ होने के मार्ग पर चलने लगा है और उसी ने वास्तव में सर्वज्ञदेव की आज्ञा का पालन किया है।

(१४५) २४८१ वर्ष पूर्व पावापुरी धाम में भगवान महावीर अभूतपूर्व सिद्धपद को प्राप्त हुए... भव्य जीवों का परम इष्ट और अंतिम ध्येय जो मोक्ष पद है, वह भगवान ने प्राप्त किया। 'अहो! भगवान आज अनादि संसार से मुक्त होकर सादि-अनंत सिद्धपद में पहुँचे और भगवान के युवराज गौतम गणधर ने केवलज्ञान प्राप्त किया'—इसे सुनकर किस मुमुक्षु का हृदय आनन्द में नहीं नाच उठेगा? अहा प्रभु! आपने स्वाश्रय द्वारा ज्ञानसम्पदा को प्राप्त किया और हमें भी ज्ञानसम्पदा

की प्राप्ति का उपदेश देकर आप मोक्ष में पहुँच गये... हे प्रभो! हम उस उपदेश को झेलकर, ज्ञान सम्पदा की ओर झुककर आपको नमस्कार करते हैं और आपके पथ पर... आपके पुनीत पदचिह्नों पर आ रहे हैं।

'प्रभुजी! तारा पगले-पगले मारे आववुं रे,....'

(१४६) वैशाख शुक्ल दूज के दिन पूज्य गुरुदेव ने आत्मा के उद्धार की उल्लास भरी कहानी कही थी—अहो, जो आत्मोद्धार के मार्ग पर पहुँच गया, उसके परिणाम उल्लासरूप होते हैं... और उसे छुटकारे के ही विकल्प आते हैं... स्वप्न भी उसी के आते हैं... छुटकारे के प्रसंग की ओर ही उसका झुकाव होता है.. भवबंधन से छुटकारे का अपूर्व अवसर आने पर किस मोक्षार्थी की परिणति आनन्द से उल्लसित नहीं होगी?

(१४७) सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप जो वीतरागी शुद्धभाव, वही मोक्ष का कारण है, और उस शुद्धभाव की प्राप्ति जैनशासन में ही है, उसी से जैनशासन की महिमा है। इसके अतिरिक्त राग कहीं जैनधर्म नहीं है और उसके द्वारा जैनशासन की महिमा नहीं है।

(१४८) 'आत्मा तो ज्ञान है। इस शरीर... श्वास... और आकुलता—इन तीनों से भिन्न आत्मा ज्ञान... दर्शन... तथा आनन्द—इन तीन स्वरूप है... इसका लक्ष रखना चाहिये।' (-पूज्य गुरुदेव)

आतमराम अविनाशी आव्यो अेकलो....
ज्ञान अने दरशन छे अेनुं रूप जो....
बहिर्भावो ते स्पर्शे नहि आत्मने....
खरेखरो अे ज्ञायक वीर गणाय जो....

(—पूज्य बेन श्री बेन)

(१४९) अहा! जैनधर्म क्या वस्तु है, उसकी बात लोगों ने यथार्थ सुनी भी नहीं है। एक क्षण भी जैनधर्म प्रगट करे तो अनंतभव का 'कट' हो जाये और आत्मा में मोक्ष की छाप अंकित हो जाये—मुक्ति की निःशंकता हो जाये।—ऐसा जैनधर्म है, इसलिये हे भव्य! भव-विनाश के लिये तू ऐसे जैनधर्म की भावना कर।

यह है जैनधर्म का मुद्रालेख—'दर्शनशुद्धि से ही आत्मसिद्धि।'

(१५०) लौकिकजन पुण्य को धर्म मानते हैं किन्तु वह धर्म नहीं है। जब तक शुद्ध आत्मा

को श्रद्धा-ज्ञान में न ले, तब तक इस शर्मनाक जन्म-मरण से छुटकारा नहीं होता।

(१५१) हे वत्स! अपना आनन्द अपने में ही ढूँढ़! तेरा आनन्द तुझ में ही है, वह बाहर ढूँढ़ने से नहीं मिलेगा। तेरा सम्पूर्ण द्रव्य ही सर्वप्रदेशों में आनन्द से भरपूर है, उसे देखे तो तुझे अपने आनन्द का अपूर्व अनुभव हो। अपना आनन्द अपने में ही है—ऐसा जानकर, हे जीव! तू आनन्दित हो... आत्मा के प्रति उल्लसित हो!

(१५२) श्रीगुरु ने जो कुछ कहा, उसी की शिष्य को धुन लगी है... निरन्तर उसी की अभिलाषा है... दिन-रात उसी का चिंतवन करता है... आत्मा को प्राप्त करने की धुन लग गई है... उसी की चाह है, और वह अवश्य आत्मा को प्राप्त करता है।

(१५३) यदि निश्चयनय के अनुसार वस्तुस्वरूप को जानकर पर से भिन्नता तथा स्व में एकता (एकत्व-विभक्तपना) करे, तभी जीव का हित होता है; इसलिये जो जीव इसप्रकार समझे, वही सर्वज्ञ वीतरागदेव के हितोपेदश को समझा है तथा उसी का हित होता है।

(१५४) सर्वप्रथम ज्ञानस्वरूप के निर्णय पर मुख्य भार देकर पूज्य गुरुदेव कहते हैं कि—

'मैं ज्ञानस्वभाव ही हूँ'—ऐसे निर्णय के बिना केवलज्ञानी के आत्मा को या संतों के आत्मा को सचमुच पहिचाना नहीं जा सकता। एक बार तो ज्ञानस्वभाव का ऐसा दृढ़ निर्णय हो जाना चाहिये कि बस! फिर वीर्य का वेग स्वोन्मुख ही ढलता है।

(१५५) एक बधाई!!

भक्तजनों को बधाई देते हुए हर्ष होता है कि तीर्थाधिराज श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा की घोषणा परमपूज्य गुरुदेव ने इस (वीर सं० २४८२) श्रावण शुक्ला प्रतिपदा के दिन कर दी है। ×××यह बधाई संदेश सुनते ही भक्तजन हर्षित हो उठे थे ××× पूज्य गुरुदेव के साथ-साथ शाश्वत सिद्धिधाम की यात्रा के लिये भक्तजनों के हृदय अधीर हो रहे थे।

(१५६) अपने साधर्मी बन्धुओं को एक महान समाचार देते हुए हमें अत्यंत हर्ष होता है कि इस पर्यूषण पर्व के प्रथम दिन (भाद्रपद शुक्ला पंचमी, रविवार को) परमपूज्य सद्गुरुदेव के उपदेश से प्रभावित होकर १८ से २६ वर्ष की उम्रवाली १४ कुमारिकाओं ने आजीवन ब्रह्मचर्य-प्रतिज्ञा अंगीकार की है... यह ब्रह्मचर्य-प्रतिज्ञा जिस उद्देश्य से ग्रहण की गई है, उसकी बड़ी महत्ता है...

***

हे जीव! तुझे कहीं अच्छा न लगता हो तो अपने उपयोग को बदल दे... और आत्मा से प्रीति कर! आत्मा में आनन्द भरा है, इसलिये वहाँ तुझे जरूर अच्छा लगेगा।

(१५७) समयसार की पाँचवीं गाथा में आचार्य कुन्दकुन्दस्वामी कहते हैं कि—सर्वज्ञ भगवान से लेकर हमारे गुरुपर्यंत के पर-अपर गुरुओं ने अनुग्रहपूर्वक उपदेश दिया... क्या उपदेश दिया?—'शुद्धात्मतत्त्व का उपदेश दिया।' भगवान ने और संतों ने प्रसन्न होकर—हमारा स्वीकार करके—अनुग्रहपूर्वक प्रसादरूप से जो शुद्धात्मतत्त्व का उपदेश दिया, वही हम स्वानुभवप्रमाण से अपने निज वैभव से यहाँ दर्शा रहे हैं।

(१५८) तीर्थंकरों और संतों के पुनीत चरणों से पावन हुई भूमि में ज्ञानी जब तीर्थयात्रा करने जाते हैं, तब उन्हें ऐसा नहीं लगता कि परदेश में आये हैं; उनके तो ऐसे भाव उल्लसित होते हैं कि—अहो! यह तो हमारे धर्मपिता का देश! हम अपने धर्मपिता के आँगन में आये हैं। हे नाथ! आप हमारे धर्मपिता हैं... हम आपके पुत्र हैं... आपके चरण-चिह्नों पर, आपके पुनीत पथ पर हम सिद्धिधाम में आ रहे हैं।

(१५९) किसकी आराधना?

यह चैतन्यस्वरूपी आत्मा स्वयं ही अनंत शक्तिवान देव है, स्वयं ही अपना परमेश्वर है, स्वयं दर्शन-ज्ञान-आनन्द से परिपूर्ण है, वही आराध्य है; इसलिये उसकी ओर उन्मुख होकर उसी की आराधना करनी चाहिये। उसकी आराधना का फल मोक्ष है।

(१६०) **प्रश्न**—कान होने पर भी बहरा कौन है?

उत्तर—जो आत्मस्वरूप की बात नहीं सुनता।

प्रश्न—आँखें होने पर भी अंधा कौन है?

उत्तर—जो जिनेन्द्रदेव के दर्शन नहीं करता।

प्रश्न—शास्त्र पढ़ा होने पर भी मूर्ख कौन है?

उत्तर—जो चैतन्यतत्त्व को नहीं जानता।

प्रश्न—आलसी कौन है?

उत्तर—जो तीर्थयात्रा नहीं करता।

प्रश्न—विद्वान कौन है?

उत्तर—जो आत्मविद्या जानता है।

(१६१) **फाल्गुन शुक्ला सप्तमी**—रात्रि के दो बजते ही पूज्य गुरुदेव तैयार हो गये... और सिद्ध भगवंतों का स्मरण करके शाश्वत सिद्धिधाम की यात्रा के लिये मंगल प्रयाण किया... सूर्योदय होते ही वहाँ पहुँचकर पहली टूंक पर गुरुदेव ने स्तवन बुलवाया और बीच में कहा कि—देखो, यहाँ से अनंत तीर्थंकर और मुनि मोक्ष पधारे हैं; वे अनंत सिद्ध भगवंत इस समय यहाँ से ठीक ऊपर विराजमान हैं... आज यह महामंगल अवसर है.. यह भूमि मंगल है; यह काल मंगल है... मोक्ष प्राप्त करनेवाला द्रव्य भी मंगल है... गुरुदेव, सिद्धभगवंतों की महिमा समझा रहे थे... और 'ऐसे सिद्ध भगवंतों को अपने हृदय में स्थापित करके उनका ध्यान करो।'—ऐसी प्रेरणा भक्तों के हृदय में जागृत कर रहे थे... वह पावन तीर्थधाम हजारों भक्तों से भर गया था... गुरुदेव ने सुपार्श्वप्रभु के चरण-कमल का अभिषेक किया... श्री पार्श्वनाथ भगवान की अंतिम टूंक पर भी गुरुदेव ने भक्तिपूर्वक दो स्तवन गवाये थे... अंत में पूज्य बेनश्री बेन ने एक स्तवन गवाया... और इसप्रकार अति आनन्द तथा जय-जयकारपूर्वक पूज्य गुरुदेव की संघसहित शाश्वत् तीर्थधाम की यात्रा पूर्ण हुई।

(१६२) दो आदमी जब मिलते हैं, तब पूछते हैं 'कहाँ रहते हैं ?' उसी प्रकार यहाँ आत्मा से कोई पूछे कि—'कहाँ रहते हैं ?' तो ज्ञानी कहते हैं कि—'अपने निजधर्म में रहते हैं।'

(१६३) महापुरुषों ने देखा कि आत्मा में ही सुख है। संयोग में सुख नहीं है; इसलिये संयोग की ओर का झुकाव छोड़कर वे स्वभाव में एकाग्र हुए। स्वभाव के ओर की एकाग्रता वह सुख की जनेता है।

(१६४) राजगृही नगरी में... पूज्य गुरुदेव ने विपुलाचल पर... महावीरस्वामी के समवसरण तथा दिव्यध्वनिधाम को हार्दिक उल्लासपूर्वक निहारा... दिव्यध्वनि खिरने के उस धन्य अवसर का स्मरण करके भावभीनी अद्‌भुत भक्ति की... जिस भूमि में आत्मा के ज्ञान-आनन्द को प्राप्त जीव विचरे हों, उसे देखते ही आत्मा के ज्ञान-आनन्द का स्मरण होने लगता है।

'अनंत चौबीसी के तीर्थंकरों एवं आचार्यों ने सत्य दिगम्बर जैनधर्म को अर्थात् मोक्षमार्ग को प्रगट करनेवाला जो संदेश सुनाया, वही इनकी (श्री कानजी स्वामी की) वाणी में हमें सुनने को मिल रहा है... इनकी वाणी में तीर्थंकरों का तथा कुन्दकुन्दस्वामी का ही हार्द था... आपकी दृष्टि से जो प्रतिपादित हो रहा है, वह जगत के लिये कल्याणकारी है।'

(—पं. वंशीधरजी 'सिद्धान्तशास्त्री', इन्दौर-मधुवन के भाषण से)

(१६५) अरे जीव! तू बाह्य विषयों में सुख मानकर वही आसक्त हो रहा है, किन्तु 'आत्मा' भी एक विषय है, उसे तू क्यों भूल जाता है? जिसे लक्ष में लेने पर अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन होता है—ऐसे परम-शांत आनन्दस्वरूप स्वविषय को छोड़कर दु:खदायी ऐसे परविषयों में तू क्यों लीन हो रहा है?—स्वविषय में एकाकार होते ही तुझे ऐसा अनुभव होगा कि अहो, ऐसा मेरा आत्मा!—और फिर इस स्वविषय के अतीन्द्रिय आनन्द के निकट जगत् के अन्य सब विषय तुझे तुच्छ भासित होगें।

(१६६) यह जिनागम का प्रसिद्ध ढँढेरा है कि—मोक्ष के लिये ज्ञानस्वरूप आत्मा की अनुभूति करो... उस अनुभूति को ही भगवान ने मोक्ष का कारण कहा है।

(१६७) जो धर्मी है अथवा धर्म का सच्चा जिज्ञासु है, उसे जगत् की अपेक्षा आत्मा प्यारा है; आत्मा से अधिक प्रिय वस्तु उसके लिये जगत् में अन्य कोई नहीं है। जिसप्रकार गाय का अपने बछड़े के प्रति और बालक का अपनी माँ के प्रति जैसा प्यार होता है, वैसा ही धर्मी को अपने रत्नत्रयस्वभावरूप मोक्षमार्ग के प्रति अभेदबुद्धि से परम वात्सल्य होता है।

(१६८) सभा में उपस्थित होने पर भी जिस श्रोता का उपयोग श्रवण में नहीं लगता तथा अन्यत्र बाह्य में भटकता है, उस श्रोता का आत्मा अनुपस्थित है। उसका शरीर यहाँ बैठा है किन्तु आत्मा का उपयोग तो अन्यत्र भटक रहा है; इसलिये वह उपस्थित होने पर भी अनुपस्थित है।

(१६९) **प्रश्न**—प्रज्ञा छैनी द्वारा आत्मा और बंध का भेदज्ञान करने से क्या होता है?

उत्तर—प्रज्ञा छैनी द्वारा भेदज्ञान करते ही आत्मा में मोक्ष का संदेश आ जाता है, आत्मा में सिद्धभगवान जैसे आनन्द का अंश प्रगट हो जाता है।

(१७०) वह छोटा-सा राजकुमार जब दीक्षा लेकर मुनि होता है... एक हाथ में कमण्डल और दूसरे हाथ में पींछी लेकर चलता है, तब तो ऐसा लगता है मानों छोटे से सिद्धभगवान ही उतर आये हों....! अहा! वैराग्य का अद्भुत दृश्य! आनन्द में लीनता! धन्य है वह दशा!

(१७१) भले ही 'एटम बम' या कृत्रिम उपग्रह की खबर न हो, किन्तु आत्मस्वरूप को जानकर भवसमुद्र से पार होना आ गया तो वह जीव सम्यक्विद्या में आगे बढ़ रहा है; उसी ने सच्चा 'विज्ञान' जाना है और वह विज्ञान उसे परमशांति का कारण होता है।

—यह है अध्यात्म-विज्ञान!

—यह है भारत की अध्यात्मविद्या!

'सा विद्या या विमुक्तये।'

(१७२) 'अहो! आत्मा में ही आनन्द है, आत्मा ही सिद्ध-भगवान जैसा है,'—ऐसे अध्यात्म का श्रवण करानेवाले संतों का मिलना अनंत काल में अति दुर्लभ है। ऐसे अध्यात्म के श्रवण में जीव को अति विनय एवं अत्यंत पात्रता की आवश्यकता है। यहाँ पूज्य गुरुदेव परम भक्ति पूर्वक गद्गद्भाव से कहते हैं कि:—

अहाहा! कहीं भावलिंगी संत-मुनि मिलें और ऐसी अध्यात्म की बात सुनायें तो उनके चरणों में बैठकर.... अरे! उनके पाँवों के तलवे चाटकर यह बात सुनें!

(१७३) फाल्गुन शुक्ला दूज के दिन विदेहवासी देवाधिदेव सीमंधर प्रभु सोनगढ़ पधारे... नूतन जिनमंदिर में, भगवान के भव्य दरबार में रात्रि को उल्लास भरी भक्ति होती थी। फिर जन्मकल्याणक आदि दिनों की भक्ति का तो कहना ही क्या था... मानों आज ही भगवान ने पुण्डरीक नगरी में जन्म लिया हो और हम यहाँ उनका जन्मकल्याणक मना रहे हों... ऐसे आनन्दपूर्वक भक्ति होती थी। सोनगढ़ के जिनमंदिर का नया द्वार विशाल बन जाने से भगवान के दरबार का दृश्य अत्यन्त सुन्दर एवं महिमावान लगता है... उसकी शोभा देखकर भक्त आनन्दविभोर हो जाते हैं।

(१७४) अहा! तीर्थंकर भी दीक्षा कके समय जिनका चिंतन करते हैं—ऐसी वैराग्य-रस में झूलती हुई इन बारह भावनाओं को भाते हुए किस भव्य को आनन्द नहीं होगा? तथा किस भव्य को मोक्षमार्ग का उत्साह जागृत नहीं होगा? यह भावनाएँ तो 'भविकजन-आनन्दजननी' हैं और उन्हें सुनते ही भव्य जीवों को मोक्षमार्ग का उल्लास आता है।

(१७५) मोक्ष का मार्ग 'सामायिक' है। सामायिक किसके वश है? सामायिक स्व-वश है अर्थात् अपने आत्मस्वभाव के आधीन ही सामायिक है, इसके अतिरिक्त अन्य किसी के वश सामायिक नहीं है। सम्पूर्णरूप से शुद्ध आत्मा के ही वश वर्तते हुए सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप जो वीतरागी सामायिक है, वही कर्मक्षय करके मोक्ष प्राप्त करने में कुशल है।

(१७६) सम्यक्त्वी धर्मात्मा को रत्नत्रय के साधक संत-मुनिवरों के प्रति ऐसा भक्तिभाव होता है कि उन्हें देखते ही उसके रोम-रोम में भक्ति उल्लसित हो जाती है... अहो! यह मोक्ष के साधक संत भगवान के लिये मैं क्या-क्या करूँ?—किस-किसप्रकार इनकी सेवा करूँ? और जब ऐसे साधकमुनि अपने आँगन में पधारें, तब तो मानों साक्षात् भगवान ही आँगन में पधारे हों... साक्षात् मोक्षमार्ग ही आँगन में आ गया हो!

(१७७) वीर सं० २४८२ के आषाढ़ मास में गुरुदेव का एक अद्‌भुत प्रवचन आया था। उसे सुनकर एक जिज्ञासु ने रात्रिचर्चा के समय गुरुदेव से पूछा कि—'आपकी वाणी भी ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा के प्रवाह से भरी हुई निकलती है; तब सीमंधर भगवान की वाणी कैसी होगी?'

गुरुदेव के हृदय से अतिशय बहुमानपूर्वक उद्‌गार निकले कि—अहो! उसकी तो बात ही क्या!.... वह तो मानों अमृत! शान्तरस का स्रोत ही मानों बह रहा हो! गणधर जैसे तो उनके श्रोता होते है... उस वाणी की तो बात ही क्या.....!

निजस्वरूप का उपयोग वह सुख है।
वह बालगोपाल सब कर सकते हैं।
उसके अतिरिक्त शांति का अन्य कोई उपाय नहीं है। (—गुरुदेव)

(१७८) 'हम तो स्त्री हैं, हम से क्या धर्म हो सकता है,'—ऐसा नहीं मानना चाहिये... पूर्वकाल में आत्मा की प्रतीति कर-करके अनेक स्त्रियाँ एकावतारी हो गई हैं, और आजकल भी ऐसी स्त्रियाँ है... आत्मा का भान करे, उसे पुनः स्त्री का भव नहीं मिलता... इसलिये सत्समागम से सच्चा ज्ञान करके; आत्मा के स्व-संवेदन द्वारा स्वयं अपने आत्मा का हित कर लेना चाहिये... यही हमारा उपदेश है और यही हमारा आशीर्वाद है।

(१७९) मंगल बधाई!!

शाश्वत् तीर्थाधिराज श्री सम्मेदशिखर आदि तीर्थों की यात्रा के पश्चात्, दक्षिण के तीर्थधामों की यात्रा भी पूज्य गुरुदेव के साथ हो—ऐसी अनेक भक्तों की भावना थी... जिज्ञासुओं को समाचार देते हुए हर्ष होता है कि पूज्य गुरुदेव यात्रासंघ के साथ बम्बई से (माघ शुक्ला दसमी मंगलवार सं० २०१५ के दिन) प्रस्थान करके दक्षिण के तीर्थधाम श्री मूलबिद्री, श्रवणबेलगोला-बाहुबलिजी, कुंथलगिरि, मुक्तागिरि आदि अनेक तीर्थों की यात्रा करेंगे...

निर्णय, धर्म की यथार्थ भूमिका है। वह निर्णय कैसा? तो कहते हैं कि—अंतर में आत्मा का स्पर्श करके जो निर्णय किया जाता है, वह निर्णय ऐसा होता है कि—कदाचित् शरीर का नाम तो भूल जाये, किन्तु निजस्वरूप को न भूले। शरीर का प्रेमी मिटकर वह 'आत्मप्रेमी' बन गया। उस निर्णय में राग की रुचि नहीं है किन्तु चैतन्य का उत्साह है।

(१८०) **प्रश्नः**—अनादिकालीन अज्ञानी जीव को सम्यग्दर्शन प्राप्त करने से पूर्व तो मात्र विकल्प ही होता है न?

उत्तर:—नहीं; मात्र विकल्प नहीं होता। स्वभाव की ओर ढलते हुए जीव को विकल्प होने पर भी उसी, समय आत्मस्वभाव की महिमा का लक्ष भी कार्य करता है और उस लक्ष के बल से ही वह जीव आत्मा की ओर बढ़ता है; कहीं विकल्प के बल से आगे नहीं बढ़ा जाता... राग की ओर का बल टूटने लगा और स्वभाव की ओर का बल बढ़ने लगा, वहाँ (सविकल्प दशा होने पर भी) अकेला राग ही कार्य नहीं करता, किन्तु राग के अवलम्बन से रहित, स्वभाव के ओर की शक्तिवाला एक भाव भी वहाँ कार्य करता है... और उसके बल से आगे बढ़ते-बढ़ते, पुरुषार्थ का कोई अपूर्व चमत्कार करके निर्विकल्प आनन्द के वेदन सहित सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है।

(१८१) नूतन वर्ष के उपहार में गुरुदेव ने साक्षात् मोक्षमार्ग का स्वरूप दिया... 'स्वस्ति साक्षात् मोक्षमार्ग....' ऐसा कहकर आचार्य भगवान आशीर्वाद देते हैं कि हे भव्यजीवों! तुम वीतरागस्वरूप साक्षात् मोक्षमार्ग की आराधना करो!

इस नूतन वर्ष के प्रारम्भ में, सुखपूर्वक तीर्थ का प्रारम्भ करने की बात आती है। आचार्य भगवान और ज्ञानी-संत नूतनवर्ष के प्रारम्भ में अलौकिक आशीर्वाद देते हैं कि तुम सुखपूर्वक तीर्थ का प्रारम्भ करो...।

❀ जिसने मोक्ष की आराधना का भाव प्रगट किया, उसने अपने आत्मा में रत्नत्रयरूपी दीपकों से दीपावली महोत्सव मनाया। भगवान महावीर के मार्ग को प्राप्त करके, ज्ञानी-गुरुओं के आशीर्वाद से हम भी अपने आत्मा में रत्नत्रय की आराधना करें और इसप्रकार रत्नत्रयरूपी दीपकों की ज्योति से दीपावली महोत्सव मनायें।

(१८२) काँग्रेस के अध्यक्ष श्री ढेबरभाई ता. ६-४-५७ के सायंकाल पूज्य गुरुदेव से मिलने के लिये वीर सेवा मन्दिर (दिल्ली) में आये थे... उन्होंने करीब एक घंटे तक पूज्य गुरुदेव से धार्मिक बातचीत की थी। उसके कुछ प्रश्नोत्तर यहाँ दिये जा रहे हैं:—

ढेबरभाई—पूर्वभव का ज्ञान वर्तमान में हो सकता है ?

गुरुदेव—हाँ; वर्तमान में भी ऐसे जीव हैं; परन्तु आत्मा क्या वस्तु है—उसका ज्ञान करना ही मुख्य है।

ढेबरभाई—आपके उपदेश का मुख्य विषय आत्मा है और यही भारत की ब्रह्मविद्या है।

गुरुदेव—हाँ; ब्रह्मविद्या—आत्मविद्या ही तो मुख्य वस्तु है। भारत में जो ब्रह्मविद्या के संस्कार हैं, ऐसे अन्य देशों में नहीं हैं... आत्मा में ही आनन्द है; वह आत्मा में से ही प्रगट होता

है—इस विषय के संस्कार आज इसी देश में हैं। ब्रह्मचर्य का पालन और आत्मज्ञान—इन दो बातों पर ही हम विशेष भार देते हैं।

ढेबरभाई—यह तो बड़ी अच्छी बात है... आजकल लोगों की लोलुपता बहुत बढ़ गई है। वर्तमान में इस बात की मुख्य आवश्यकता है।

(१८३) संत आत्मप्राप्ति का आशीर्वाद देते हैं कि—हे जीवों! भेदज्ञान द्वारा स्वतत्त्व को प्राप्त करके आज ही तुम परम आनन्दरूप परिणमित होओ। 'फिर करेंगे'—ऐसा विलम्ब न करके आज ही अनुभव करो। इस लोक में यह चैतन्यतत्त्व ही परम उत्तम है, अन्य कुछ उत्तम नहीं है; इसलिये ऐसे स्वतत्त्व का आज ही उग्ररूप अनुभव करो।

(१८४) ....यात्रासंघ दहीगाँव आ पहुँचा... थके हुए यात्रियों को दहीगाँव में सीमंधरादि बीस विरहमान भगवंतों के साथ दर्शन होने से अत्यन्त आनन्द हुआ... हृदय प्रसन्नता से नाच उठा... (जिला कोल्हापुर-कुम्भोज के पास बाहुबलि क्षेत्र में) श्री बाहुबलि भगवान की २८ फुट ऊँची मनोज्ञ प्रतिमा है... प्रतिमाजी का वजन करीब ९०० मन है और ८०,०००) अस्सी हजार रुपये की लागत है।

(१८५) फाल्गुन कृष्णा तृतीया के प्रातःकाल कुन्दकुन्द पर्वत की यात्रा प्रारम्भ की... कुन्दकुन्द प्रभु जिस भूमि में विचरे थे, उस पवित्रभूमि में विचरते हुए गुरुदेव को अत्यन्त भक्ति उल्लसित हो रही थी... उस महान ऐतिहासिक यात्रा के चिर-स्मरणार्थ करीब १२,०००) बारह हजार का एक फण्ड एकत्र हो गया था।

[कुन्दगिरि बहुत मनोज्ञ है, श्री कुन्दकुन्दाचार्य यहाँ पर आते थे और समाधिमरण यहाँ ही हुआ है, उसका आधार वहाँ तैलपराजा ××× वि० सं० नौंवी सदी का शिलालेख है, आसपास के कई गाँवों के नामों में 'कुन्द' शब्द आते हैं, पहाड़ की भव्यता देखते ही बनती है, ऊपर मंदिर, मानस्तंभ, प्राचीन जिनप्रतिमायें, तालाब और चंपा के वृक्ष हैं, नीचे से ऊपर मोटर जाती है—वहाँ ऊपर डाकबंगला अभी हुआ है, वह स्थल-हुबली, हुम्बच, शीमोगा, तीर्थहली से आगे और आगमबे से समीप 'कुन्दकेरे' से रास्ता अंदर ४ मील तक जाता है।]

(मूलबिद्री में—) गुरुदेव के साथ विविध प्रकार के ३५ रत्न-मणियों की महामूल्यवान जिनप्रतिमाओं के दर्शन किये... दर्शन से आनन्दित होकर पूज्य बेन श्री बेन ने 'वाहवा जी वाहवा....' पदवाली-जिनेन्द्र भक्ति कराई थी....

फाल्गुन कृष्णा नवमी के प्रातःकाल (श्रवणबेलगोला में) ऊपर पहुँचकर ५७ फुट ऊँचे बाहुबलिस्वामी को निहारते हुए गुरुदेव आश्चर्य एवं भक्ति से स्तब्ध हो गये... अत्यन्त भावपूर्वक पुनः पुनः उन वीतरागीनाथ को निहारा और दर्शन कर-करके उल्लास व्यक्त किया... फिर भावपूर्वक बाहुबलिभगवान के चरणों का अभिषेक किया। (बोलियों में करीब दस हजार का फण्ड हो गया था।)

पोन्नूरः—इस पर्वत पर कुन्दकुन्दाचार्यदेव की तपोभूमि है.... उस पर महामंगल चरण-पादुका हैं... चम्पा के वृक्ष हैं... कुन्दकुन्दप्रभु की पवित्र तपोभूमि की यात्रा बड़े आनन्दपूर्वक हुई—मानों साक्षात् कुन्दकुन्दप्रभु के ही दर्शन हुए हों!—ऐसा आनंद भक्तों को उस यात्रा में हुआ था। (यात्रा के स्मरणार्थ करीब दस हजार का फण्ड भी हो गया था।)

(१८६) हे परम वैरागी... अडिग साधक... बाहुबलिनाथ! आपकी परम आत्मसाधना हमारे हृदय में अंकित हो गई है... कहान गुरुदेव के साथ हुई आपकी यह महा मंगलवर्द्धिनी यात्रा समस्त यात्रियों के जीवन में आत्महित की प्रेरणा का एक अमर स्रोत बन जायेगा... प्रभो! आपके आत्मप्रदेशों से मानों संसार की असारता एवं ज्ञायकभाव में लीनता की ध्वनि उठ रही है।

(१८७) गुरुदेव कहते हैं कि—यात्रा में अनेक तीर्थ देखे... उनमें बाहुबलिभगवान की मुद्रा तो मानों वर्तमान जीवंत-मूर्ति हो! उसके सर्व अंगोपांग से पुण्य और पवित्रता दोनों झर रहे हैं... उसे देखते हुए तृप्ति नहीं होती... आजकल इस संसार में वह अद्वितीय है।

(१८८) कोई पूछे कि ऐसा भेदज्ञान कब होता है? उसमें कितना समय लगता है?—तो आचार्यदेव उत्तर देते हैं कि हे भाई! जगत का कोलाहल छोड़कर और आत्मार्थी बनकर यदि तू अंतर में शुद्ध आत्मा के अनुभव का प्रयत्न कर तो अंतर्मुहूर्त में ही उसकी प्राप्ति हो जायेगी... अधिक से अधिक छह महीने लगेंगे... छह महीने में अवश्य शुद्धात्मा की प्राप्ति होगी।

(१८९) जिसप्रकार कोरे घड़े पर पानी की बूँद गिरते ही वह चूस लेता है... उसीप्रकार दुःख से अति संतप्त हुए आत्मार्थी जीव को श्रीगुरु के पास के शांति का उपदेश मिलते ही वह उसे चूस लेता है, अर्थात् तुरन्त ही अपने आत्मा में परिणमित कर देता है।

(१९०) अहो, वह पवित्र आत्मा जयवन्त वर्ते... कि जो आत्मा सम्यक्त्व की प्रभुता सहित है, जिसका ज्ञान पावन है, जिसकी चैतन्यमुद्रा पर अतीन्द्रिय आनन्द व्याप्त हो गया है तथा जो वैराग्यरूपी गम्भीर समुद्र में निमग्न है।

(१९१) **हे आत्मार्थी बन्धु!**

आत्मसाधना में जगत के अनेक प्रतिकूल—अनुकूल संयोग तो बीच में आयेंगे ही... ऐसे अवसर पर अपनी आत्मार्थिता के बल से, अपनी सर्वशक्ति को उपयोग में लेकर अपनी आत्म-साधना में अडिग रहना... 'आत्मार्थिता...' यह एक ही ऐसा महान बल है कि जिसके समक्ष जगत का कोई बल नहीं चलता... सचमुच आत्मार्थी को जगत में कोई विघ्न है ही नहीं। तथापि हे जीव! तुझे उलझन मालूम होती हो तो, पूर्वकालीन महापुरुषों के जीवन का स्मरण कर... उनके उदाहरण से अपने आत्मा को उत्साह प्रदान कर।

(१९२) धर्मी कहते हैं कि—

अपने आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द के सिवा इस जगत में अन्य कुछ हमें प्रिय नहीं है। हमारे आनन्द का समावेश हमारे आत्मा में ही है।

(१९३) ×××आत्मार्थी के अंतरंग में ऐसी भावतरंगें स्फुरित होती हैं मानों परिणति उल्लसित हो-होकर 'ध्रुव कारण' से भेंट कर रही हो! सचमुच अपने हितकार्य के कामी जीवों को हित का यथार्थ कारणा दर्शाकर संतों ने महान उपकार किया है। 'न हि कृतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति'—इस उक्ति के अनुसार उन संतों के महान उपकार का पुनः-पुनः स्मरण करके उन्हें नमस्कार करते हैं।

(१९४) आत्मार्थ साधने के लिये सच्ची तत्परता होगी तो जगत में किसी की शक्ति नहीं है जो तेरे आत्मकार्य में विघ्न कर सके। जहाँ आत्मार्थ की सच्ची तत्परता है, वहाँ सारा जगत उसे आत्मार्थ-प्राप्ति में अनुकूल परिणमित हो जाता है और वह जीव अवश्य ही आत्मार्थ को साध लेता है; इसलिये हे जीव! जगत में अन्य सब कुछ भूलकर तू अपने आत्मार्थ में यथार्थरूप से तत्पर हो।

(१९५) प्रथम तो जीव को ऐसी तीव्र आकांक्षा जागृत होना चाहिये और आत्मा की धुन लगना चाहिये कि अपने आत्मा का सम्यग्दर्शन किये बिना इस जन्म-मरण से छुटकारा नहीं हो सकता। इसलिये सर्व उद्यम से सम्यग्दर्शन करनेयोग्य है।

(१९६) गुणों में महान गुरु जैसा कहते हैं, तदनुसार शिष्य परिणमित हो जाता है, वही गुरु के चरणों की सच्ची सेवा है... और ऐसी सेवा के प्रसाद से वह शिष्य अंतर में अपने आत्मा का अनुभव प्राप्त करता है।

(१९७) सम्यग्दृष्टि का हृदय गहरा है, पात्रता के बिना उसे नहीं पकड़ा जा सकता। अहा!

ज्ञानी तो महावैराग्य की मूर्ति है... उनके रोम-रोम में, चैतन्य के प्रदेश-प्रदेश में राग से उदासीनता परिणमित हो गई है... वह सम्यक्त्वी हंस चैतन्योद्यान में निजानन्द की केलि करता है। ऐसी दशा कैसे प्रगट होती है—उसकी यह बात है।

(१९८) ....'हे पिताजी! इस असार संसार को छोड़कर अब हम दीक्षा लेना चाहते हैं, हम दीक्षा लेकर ध्रुवचैतन्यतत्त्व का ध्यान करेंगे और उसके आनन्द में लीन होकर इसी भव में सिद्धपद को साधेंगे; इसलिये हमें दीक्षा लेने की आज्ञा दो। हे तात! जिनशासन के प्रताप से सिद्धपद को साधने का जो मार्ग है, वह हमने देखा है; अब हम उसी मार्ग पर जायेंगे।'—ऐसा कहकर, जिनके रोम-रोम में, प्रदेश-प्रदेश में वैराग्य की धारा उल्लसित हुई है, ऐसे वे दोनों राजकुमार मुनि दीक्षा धारण करने के लिये रामचन्द्रजी को नमन करके वन में चले जाते हैं। अहा! धन्य है उनकी मुनिदशा! धन्य है उनका वैराग्य! और धन्य है उनका जीवन!

(१९९) हे सीमंधर भगवन! हे गणधरों! हे सन्तों! हे कुन्दकुन्द प्रभु! हे विश्व के सर्व धर्मात्माओं! हमारे आँगन में पधारो... पधारो!

(२००) 'आत्मधर्म' मासिक (गुजराती) के दो सौ अंकों की समाप्ति के अवसर पर हे गुरुदेव! हम आपके पवित्र चरणों में नमस्कार करते हैं और आपके मंगल-आशीर्वाद से सबको 'आत्मधर्म' की प्राप्ति हो—ऐसी भावना भाते हैं।

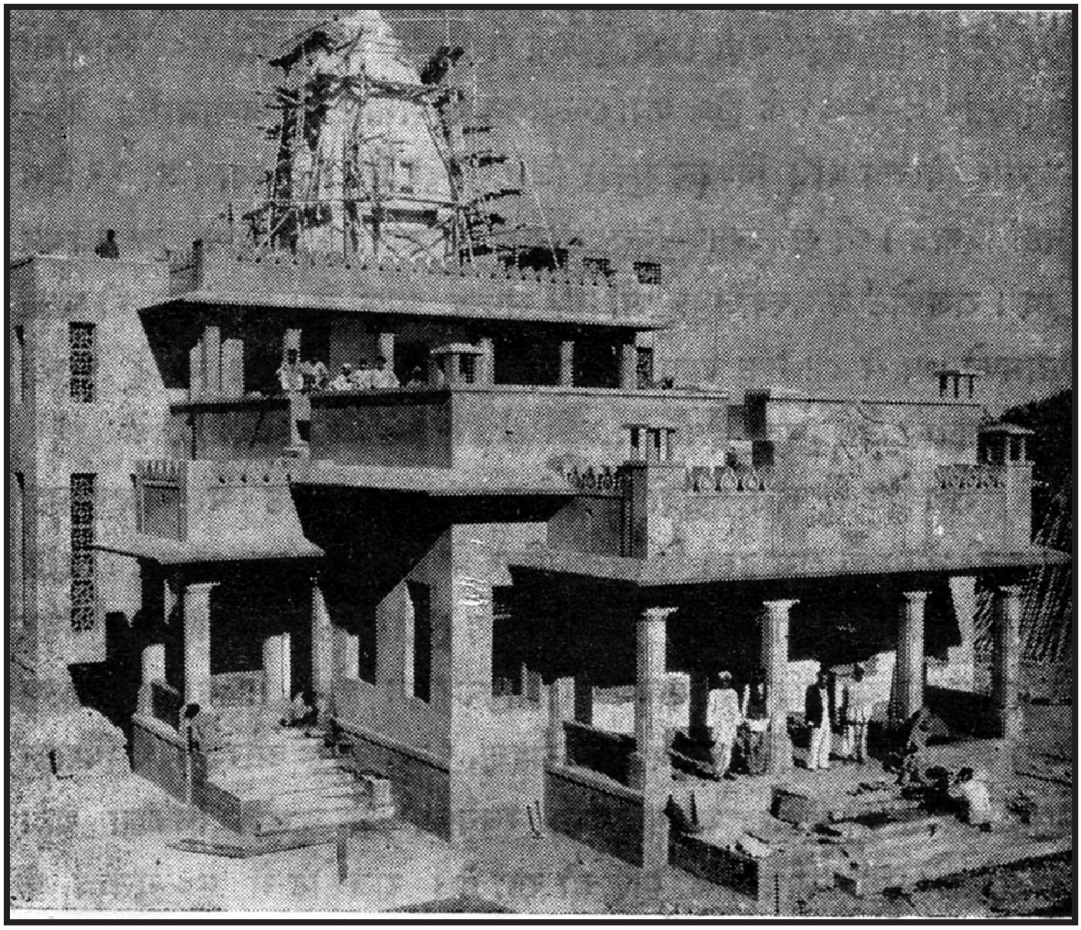

समाचार

जामनगर शहर में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के बाद पूज्य श्री कानजी स्वामी गिरनार सिद्धक्षेत्र की वंदना करके पोरबंदर शहर पधारे, वहाँ आठ दिन बहुत सुन्दर धर्म प्रभावना हुई, यहाँ दि० जैन मन्दिर सं० २००८ में हुआ है, ऊपर की वेदी में श्री बाहुबली भगवान की प्रतिमाजी को विराजमान किया गया, जिनेन्द्र रथयात्रा का जुलूस निकाला गया था, प्रतिदिन प्रवचन दो समय होता था, यहाँ शेठ श्री नानजी कालीदास का आर्यकन्या महाविद्यालय है, पधारने की विनती करने से गुरुदेव वहाँ पधारे थे, और शिक्षित बालाओं को अध्यात्म उपदेश दिया था। पोरबन्दर से राजकोट पधारते समय बीच में जेतपुर शहर कि जहाँ दि० जैन मन्दिर नया बना है, वहाँ एक दिन

ठहरकर जाहिर प्रवचन दिये थे, गोण्डल शहर में तो जामनगर से गिरनारजी जाते समय पू० स्वामीजी एक दिन ठहरे थे, जाहिर प्रवचन दिये थे।

राजकोट बहुत बड़ा शहर है, जैनों की संख्या बहुत है, पू० स्वामीजी वहाँ ता० ८-२-६१ के दिन पधारे-स्वागत में समाज का असाधारण प्रेम-उत्साह दिखता था। विशाल सुन्दर जिनमंदिर है। पू० स्वामीजी १२ दिन वहाँ विराजे। श्री समयसार-नियमसारजी शास्त्र पर सूक्ष्म न्याययुक्त प्रवचन हुए। राजकोट में तत्त्वजिज्ञासुओं की संख्या काफी है। तत्त्वज्ञान की चर्चा शाम को ७ से ८ तक बहुत सुन्दर होती थी। राजकोट में अच्छे-अच्छे अभ्यासवाले जैन मुमुक्षु हैं।

राजकोट में फागुण सुदी २ के दिन प्रातः समय सेठ श्री मोहनलाल कानजी घीया के शुभहस्त से जिनमंदिर के पास विशाल स्वाध्याय हॉल बनाने के लिये शिलान्यस विधि हुई। फागुण सुदी २ सोनगढ़ में श्री सीमंधर भगवान का जिनमंदिर में स्थापना का वार्षिक दिन होने से उसका उत्सव यहाँ मनाया था। मंदिरजी में ध्वजारोहण, पूजा, भक्ति और बाद में विशाल ठाठ-बाट से श्री जिनेन्द्र भगवान की रथयात्रा का जुलूस निकला था। राजकोट में धर्म प्रभावना की वृद्धि हो रही है। राजकोट में पू० गुरुदेव के समक्ष श्री शान्तिलाल कपूरचन्द शाह तथा धर्मपत्नी श्री गुलाबकुंवर बहिन ने तथा-श्री शांतिलाल वनमाली सेठ तथा धर्मपत्नी श्री दयाकुमारी ने सजोड़े ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा ली।

नया प्रकाशन

श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव कृत

श्री नियमसारजी

(सेठी दि० जैन ग्रन्थमाला से प्रकाशित)

महान आध्यात्मिक भगवत शास्त्र, संस्कृत टीका सहित, जिसकी तत्त्वज्ञान के जिज्ञासुओं द्वारा काफी जोरों से माँग है, पूर्ण रूप से संशोधित, यह ग्रन्थ महान पवित्र तत्त्वज्ञान की अपूर्व निधि समान है। पृष्ठ संख्या ४१५ बड़े साइज में, कपड़े की सुन्दर मजबूत जिल्द मूल्य ५.००) मात्र, पोस्टेज अलग। थोक लेने पर कमीशन २५) सैं० देंगे। जिज्ञासुगण शीघ्र आर्डर भेजें।

मिलने का पता —

श्री दि० जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट

पो० सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

आत्मधर्म के ग्राहकों को नम्र सूचना

चैत्र मास में बारहमास का चन्दा समाप्त होता है। महँगाई के कारण ४ ॥) में लागत पड़ने पर भी घाटा उठाकर ३)(तीन रुपया) सालाना ही चन्दा रखा गया है। अतः मनीआर्डर द्वारा ३) रु० भेज देवें। वी०पी० करने में तेरह आने (८१, पैसा) व्यर्थ ही लग जाते हैं।

श्री दि० जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

★

परमपूज्य श्री कानजी स्वामी के आध्यात्मिक वचनों का अपूर्व
लाभ लेने के लिये निम्नोक्त पुस्तकों का—

अवश्य स्वाध्याय करें

पंचास्तिकाय	४ ॥)	ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	२ ॥)
मूल में भूल	।।।)	मोक्षशास्त्र बड़ी टीका सजिल्द	५)
श्री मुक्तिमार्ग	॥=)	सम्यग्दर्शन (दूसरी आवृत्ति)	१ ॥=
श्री अनुभवप्रकाश	॥)	द्वादशानुप्रेक्षा (स्वामि कार्तिकेयानुप्रेक्षा)	२)
श्री पंचमेरु आदि पूजासंग्रह	।।।)	जैन तीर्थ पूजा पाठ संग्रह कपड़े की जिल्द	१ ।=)
समयसार प्रवचन भाग २	५ ।)		
समयसार प्रवचन भाग ३	४ ॥)	भेदविज्ञानसार	२)
प्रवचनसार	५)	अध्यात्मपाठसंग्रह	५)
अष्टपाहुड़	३)	समाधितन्त्र	२ ।=
चिद्विलास	१=)	निमित्तनैमित्तिक संबंध क्या है ?	=)
मोक्षमार्ग–प्रकाशक की किरणें प्र०	१ ।=)	स्तोत्रत्रयी	॥)
द्वितीय भाग	२)	लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	=)
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला प्र०	॥–)	'आत्मधर्म मासिक' लवाजम–	३)
द्वितीय भाग	॥–)	आत्मधर्म फाइलें १–३–५–६–७–८–१०–११–१२–१३ वर्ष	३ ।।।)
तृतीय भाग	॥–)		
जैन बालपोथी	।)	शासन प्रभाव	=)

[डाकव्यय अतिरिक्त]

मिलने का पता—
श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मुद्रक—नेमीचन्द बाकलीवाल, कमल प्रिन्टर्स, मदनगंज (किशनगढ़)
प्रकाशक—श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के लिये—नेमीचन्द बाकलीवाल।